रवीन्द्र शताब्दि (मई १९६१) पर उत्तर प्रदेश सरकार
द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित

रवीन्द्र गीताञ्जलि

१०१ गीतों के भावों का
हिंदी पद्य रूपान्तरण

अनुगायक
कैलाश कल्पित

प्रकाशकीय वक्तव्य

हिन्दी में 'गीताञ्जलि' के गद्यानुवाद अनेकानेक हैं, किन्तु उनमें से एक-दो ही ऐसे हैं जिन्हें अंशतः भाव-परक कहा जा सकता है। वस्तुतः काव्य पुस्तक का आनन्द गद्य-रूपान्तर में मिल ही नहीं सकता, क्योंकि काव्य की आत्मा भाषा के बीच से हटते ही भावों को निष्प्राण बना देती है और पाठक जिस जिज्ञासा से काव्य-कृति का आनन्द लेना चाहता है उसका दस प्रतिशत भी नहीं प्राप्त कर पाता।

प्रश्न उठ सकता है कि हिन्दी में 'गिताञ्जली' के कुछ पद्यानुवाद भी तो उपलब्ध हैं। इस सम्बन्ध में हम यह कहना चाहते हैं कि पद्य के पद्यानुवाद मात्र से ही मूल कृति की प्राञ्जलता का बोध नहीं हो सकता। भाषा के परिवर्तन तथा अनुवादक-कवि की प्रतिभा का भी बहुत बड़ा प्रभाव पद्यरूपान्तर के कार्य में पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका के अन्दर 'कल्पित' जी ने जिस वैज्ञानिक स्तर पर भाषा और काव्य के मर्म का विश्लेषण किया है उससे सहज ही इस नये पद्यानुवाद की महत्ता को समझा जा सकता है।

भाषा की प्राञ्जलता, शब्दों के परिष्कार और छन्दों की विविधता ने इस पुस्तक को एक नया स्वरूप दे दिया है।

परिशिष्ट में जो सामग्री जोड़ी गयी है और सम्पूर्ण पुस्तक का सम्पादन जिस रूप में किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

इसके साथ ही जब महाकवि निराला, डॉ उदय नारायण तिवारी, महाकवि सुमित्रानन्दन पंत, डा० राम कुमार वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा, डा० हरदेव बाहरी, डा० रामविलास शर्मा, पं० इलाचन्द्र जोशी, ठाकुर जयदेव सिंह, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जैसे अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों

ने इस की उन्मुक्त प्रशंसा प्रथम संस्करण होते की थी, अतः इस काव्य - कृति की महत्ता के प्रति संदिग्धता का प्रश्न ही नहीं उठता और फिर यह तो शाश्वत काव्य है ।

प्रकाशक

विषय -सूची

महाप्राण पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

गीतांजलि के अनुवाद जैसा दुस्साध्य कार्य प्रस्तुत करके श्री कैलाश कल्पित ने जो सफलता प्राप्त की है, उसके प्रति मैं उन्हें बधाई देता हूँ ।

Though more circumlocution the poetical translation in **HINDI** from the most famous bard of Calcutta, of renowned Dr. Rabindra Nath Tagore unparallel yet in voluminous contribution, in prose and poetry equaly and dauntless pioneer among Nobel Prize Holders, because of his gallantry in selection of **GEETANJALI**, I congrutulate the poet **KAILASH KALPIT** for his enterprise to translate the songs and prove success.

Nirala

महाकवि सुमित्रा नन्दन पंत, इलाहाबाद

आपकी गीतांजली का अनुवाद मैं देख चुका हूँ । अनेक गीत बहुत सुन्दर बन पड़े हैं । रवि बाबू के गीतों के माधुर्य को हिन्दी में अवतरित करने का प्रयत्न स्तुत्य तथा श्लाध्य है । मेरी शुभकामनाएं लीजिये ।

श्री कैलाश कल्पित ने विश्व कवि
रविन्द्र की गीताञ्जली के १०१ चुने
हुए गीतों का हिन्दी में पद्यानुवाद
किया है, जिसे मैंने आद्यन्त पढ़ा । एक तो
रवीन्द्र की सरस्वती धारा ने भारतीय भाषाओं
को ही नहीं विदेशी भाषाओं को भी रस-सिक्त किया
है, दूसरे उसने कवियों और लेखकों को नूतन प्रेरणाएँ
भी प्रदान की हैं । इतनी महान् कृति का पद्य में सफल
अनुवाद करना श्री कैलाश कल्पित की साहित्य साधना का
ज्वलन्त प्रमाण है ।

श्री कैलाश कल्पित ने भावों की गहराई में केवल प्रवेश ही नहीं
किया, उन्होंने अनुभूति की मुक्ताओं को भी एकत्र किया है
और भाषा के उपयुक्त ध्वनि-सूत्रों में उनका ग्रथन भी
किया है । गीतांजलि के अन्य अनुवादों से इसमें यह
विशेषता है कि इसमें यति, गति, ध्वनि और संगीत
का समस्त वातावरण मूल कृति की भाँति ही
सुरक्षित है । इसे तो बंगला गीतांजली का
हिन्दी अवतार कहना अधिक उपयुक्त
है । इस सफलता के लिए श्री कैलाश
कल्पित बधाई के पात्र हैं ।

डा० राम कुमार वर्मा
एम०ए०पी-एच०डी,
अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय
भू०पू०हिन्दी प्रोफेसर, मास्को (सोवियत् संघ)

वृन्दावन लाल वर्मा, झांसी

मैं कविता में बहुत अधिक रस लेने वाला व्यक्ति नहीं हूँ, फिर भी आपकी पुस्तक रवीन्द्र गीतांजलि जब पढ़ने बैठा तो पढ़ता ही चला गया। पुस्तक का सम्पादन बहुत अच्छा किया है । मुख्य पाठ के अतिरिक्त जो जानकारियाँ आपने दे दी हैं, उससे पुस्तक की उपादेयता हिन्दी जानने वाले पाठकों के लिए बढ़ गई हैं । शिकायत यह कि आपने अपनी यह पुस्तक इतनी देर में क्यों भेजी । 'चारुचित्रा' से तो यह पहले छप चुकी थी । सोच रहा हूँ आपका कवि प्रखर है अथवा कथाकार ।

डा० हरदेव बाहरी, इलाहाबाद

रवीन्द्र गीतांजलि में जो आप विश्व-कवि के गीतों की आत्मा की रक्षा कर सके हैं, उसके लिए आपको बधाई देता हूँ ।

डा० राम बिलास शर्मा, आगरा

गीतांजलि का यह अनुवाद पढ़ते हुए एक बीता युग जैसे साकार हो उठा । लगता है वह युग सदा के लिये बीत गया और अगली सांस्कृतिक धारा पर उसकी छाया भी जैसे उठती जा रही है । कविता का अनुवाद् दुस्साध्य है, फिर भी कैलाश कल्पित का यह प्रयत्न दुस्साहस का परिचायक नहीं है । बंगला न जानने वालों के लिये पठनीय है ।

डा० उदय नारायण तिवारी, इलाहाबाद

बंगला की गठन हिन्दी से भिन्न है और कवीन्द्र की भाव-प्रवण

रस-सिक्त वाणी को हिन्दी के ढाँचे में ढालना सरल कार्य नहीं है, किन्तु श्री कैलाश कल्पित इस गुरुतर कार्य में सर्वथा सफल हुए हैं ।

पं० इलाचन्द्र जोशी, इलाहाबाद

अनुवाद में भाव और भाषा दोनों ही सरल और सुबोध बन पड़े हैं। इस सराहनीय प्रयास के लिये कल्पित जी को बधाई देता हूँ ।

ठाकुर जयदेव सिंह (चीफ़ प्रोड्यूसर आकाशवाणी दिल्ली)

आपकी पुस्तक के गीत मूल गीतांजली के गीतों से मिला कर पढ़े। भाव और भाषा की प्राञ्जलता, दोनों ही आपने सुरक्षित रखे हैं।

महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र, दरभंगा

गीतांजलि का अनुवाद मैंने पढ़ा । गीत अनुवाद में बहुत ही मधुर एवं सरल हैं । आपका प्रयास बहुत स्तुत्य है । हृदय से आपको बधाई देता हूँ ।

डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, इलाहाबाद

गीतांजली के अनुवाद पहले भी हिन्दी में प्रस्तुत किए गये हैं किन्तु या तो गद्य में हैं अथवा खण्डित छंदों में ।

आपने जिस प्राञ्जल भाषा में और हिन्दी छंदों को जिन बहुआयामी रूप में प्रस्तुत करते हुए रवीन्द्र जी के भावों को अनुरक्षित किया है वह आपकी सृजनात्मक क्षमता और शब्द साधना का प्रतीक बन कर इस पुस्तक में प्रस्तुत हुआ है । मैं आपको इस महान् प्रयास में सफल होने के लिए हृदय से बधाई देता हूँ । उ०प्र०सरकार ने रवीन्द्र

शताब्दि पर इसे पुरस्कृत कर अपना दायित्व निभाया है । पुनः बधाई।

सुमित्रा कुमारी सिन्हा, आकाशवाणी लखनऊ

आपकी गीतांजलि जो रवीन्द्र नाथ जी के गीतों की छाया है, अपने आप में मूल रचना का आनन्द देती है । अनुवाद करने की छाया से भाषा में जो अटपटापन झलक जाता है, आपने नए नए छंद गठित कर उस अटपटेपन से इन गीतों को बचा लिया । मैं आपकी इच्छानुसार आकाशवाणी पर सरल संगीत के अन्तरगत इन्हें गाने के लिये स्वीकृति दिलाने का प्रयास करूँगी ।

आपने यह पुस्तक मुझे भेंट की अतः आभार । सफलता के लिये सस्नेह बधाई । साहित्य साधिकाएं कब तक प्रकाशित होकर आ रही है।

रजनी पनिकर, आकाशवाणी, नई दिल्ली

आपकी गीतांजलि मिली । मैंने रवीन्द्र जी की गीतांजलि का मूल पाठ कई साल पहले अंग्रेजी में पढ़ा था । आपके द्वारा अनूदित अनेक गीतों को अंग्रेजी के संस्करण से मिलाकर पढ़ा, बहुत आनन्द आया । आपकी काव्य साधना और अनुवाद की गम्भीरता को समझने का प्रयास आपकी भूमिका से झलकता है । आपका श्रम आपकी भूमिका बताती है कि इस गुरुतर कार्य को हाथ में लेने के पूर्व आपने इस सम्बन्ध मे क्या-क्या अध्ययन किया । निश्चित रूप से आपका कवि महाकवि टैगोर के भावों को प्राञ्जल भाषा में अभिव्यक्ति देने में पूर्ण सफल हुआ है । बधाई स्वीकार करें ।

त्रिपथगा (मासिक, लखनऊ)

काव्य की आत्मा और उस के वाह्य स्वरूप की अधिकाधिक रक्षा करने का विशेष प्रयास कुशल अनुगायक ने किया है । श्री कैलाश कल्पित का प्रस्तुत प्रयास सफल ही नहीं, अभिनन्दनीय है । इसमें कवीन्द्र की आत्मा हिन्दी काव्य के माध्यम से मुखर हुई है ।

दूसरे संस्करण की भूमिका

मेरे लिए यह परम संतोष की बात है, कि जिस प्रकार मेरी अन्य पूर्व प्रकाशित पुस्तकों के नये संस्करण निकलने की श्रृंखला चल पड़ी है, उसी क्रम में इस पूर्व समादृत एवं पुरस्कृत पुस्तक का भी नया संस्करण मेरी आयु के सत्तर वर्ष पूर्ण होते-होते प्रकाश में आ रहा है । मैं यहाँ कुछ अधिक कहना नहीं चाहता क्योंकि प्रथम संस्करण की भूमिका में मैंने विस्तार से अपने विचार ज्ञापित किए हैं और उस भूमिका को भी इस संस्करण में प्रकाशित किया जा रहा है ।

कोठी, गोविन्द भवन
बहादुरगंज
इलाहाबाद - ३

कैलाश कल्पित
२८-६-९४

प्रथम संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पद्यानुवाद के प्रणयन की प्रेरणा का श्रेय मैं गुरुवर निराला जी को देना चाहता हूँ । उनके सम्पर्क में आकर और उनके चरणों मे बैठकर साहित्य का जो अमृत रस मुझे मिला है वह कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। गुरुदेव रवीन्द्र जी के गीतों का आनन्द क्या है मै कभी भी नहीं जान पाता यदि महाकवि निराला ने अपनी ओजपूर्ण वाणी में सस्वर उनका काव्य और कभी कभी संगीत मुझे न सुनाया होता । निराला जी को गुरुदेव के कितने ही गीत कण्ठस्थ हैं और वे उन गीतों को अपनी मस्ती में आकर प्रायः गाते हैं ।

सितम्बर' ५३ में जब मैं 'निराला' जी के साथ उनके अभिनन्दन समारोह में सम्मिलित होने के लिये कलकत्ता गया था तो वहाँ न्यू-इम्पायर थ्येटर हाल में सांध्यकालीन भाव-गीतोत्सव के समय आचार्य क्षितिमोहन सेन ने स्वागत भाषण में कहा था -"बंगाल आज हिन्दी के महान् कवि 'निराला' का अभिनन्दन करते हुये रवि ठाकुर को याद कर रहा है, क्योंकि जिस भव्य रूप से हम आज निराला जी का स्वागत कर रहे हैं वैसा केवल गुरुदेव के नोबेल पुरस्कार जीत कर आने पर ही कर पाए थे । मेरी याद में ऐसा स्वागत राजनीतिक व्यक्तियों को छोड़कर किसी साहित्यकार का इतने बड़े जन समूह द्वारा नहीं हुआ ।" आचार्य जी के ये शब्द मेरे कानों में गूँजते रहे और मैंने गुरुवर निराला के उन क्षणों को गुरु देव ठाकुर के भव्य क्षणों से गूँथनें के लिये यह निर्णय किया कि गुरुदेव के कुछ गीतों का हिन्दी रूपान्तर गुरुवर को किसी रवीन्द्र जयन्ती समारोह पर भेंट करूँ । यह बात मेरे मस्तिक में घूमती रही, किन्तु सक्रिय रूप नहीं ले पाई । बीच के समय में तीन-चार पुस्तकें लिखीं, उपन्यास और विदेशी कहानियों के अनुवाद का कार्य भी किया

किन्तु वह बात मस्तिष्क में कौंधती रही । अचानक मई' ५६ में एक विज्ञप्ति देखने में आई कि १६६१ में गुरुदेव की १००वीं वर्षगाँठ राष्ट्रीय स्तर पर मनाई जायगी । मैंने उसी क्षण निश्चय किया कि गुरुदेव के गीतों का हिन्दी कविता में छन्दबद्ध अनुवाद कर गुरुदेव की १००वीं वर्षगांठ मनाऊँगा । फलतः इस सम्बन्ध में उचित सामग्री खोजने लगा।

बंगला और बंगालियों से मुझे कुछ स्वाभाविक प्रेम रहा है । इस नाते उनके साथ बैठने-उठने से मुझे बंगला भाषा का ज्ञान हुआ और मैं उस भाषा के रस में रस पाने लगा । गीताञ्जलि के अतिरिक्त मेरा परिचय खेया, बलाका, संचयिता और नैवेद्य आदि पुस्तकों से हुआ । बसंतोत्सवादि में बंगालियों को प्रायः रवीन्द्र-संगीत गाते सुना और उसमें मैंने आनन्द लिया । निराला जी ने अधिकतर 'गीताञ्जलि' के गीतों की ही सरसता मेरे सम्मुख रखी थी इस कारण उपर्युक्त विचार को कार्य में परिणित करने के लिये गीतांजलि ही सबसे उपयुक्त पुस्तक मुझे लगी । मैं यह जानता था कि 'गीतांजलि' पर पहले ही कुछ काम हो चुका है किन्तु अपना कुछ ऐसा विश्वास हुआ कि मेरे पास निराला जी के संसर्ग से जो रस एकत्र है उसे यदि अपने छन्दों में ढालूँगा तो सम्भवतः हिन्दी गीतांजलि के लिये मैं वही कुछ बन सकूँगा जो एडवर्ड फिट्ज-जेराल्ड अंग्रेजी की उमर खैय्याम की रूबाइयों के लिये बन गया है , खैर यह तो धृष्टता की बात है किन्तु यह सोचना अनुचित नहीं था कि शाश्वत साहित्य कभी भी पुराना नहीं होता इसलिए यह दुःसाहस करना बुरा नहीं। मेरे मस्तिष्क में एक बात यह भी आई कि ११वीं सदी की रूबाइयों का २०वीं सदी में यदि १८ रूपों में अकेले हिन्दी में अनुवाद हो सकता है तो २०वीं सदी की अमर कृति 'गीतांजलि' का एक और नवीन अनुवाद क्यों नहीं हो सकता ! हिन्दी के पाठकों का जो आत्मिक

गठबन्धन गीताजलि के दर्शन से है वह उमर खैय्याम से नही , इसलिये विद्वत समाज को जितना इसे अपनाना चाहिये उतना किसी विदेशी कृति को नहीं । अन्य देशों की जनता इतनी जागरूक है कि वहाँ लाखों कि संख्या में अनूदित विदेशी साहित्य भी बिक जाता है किन्तु भारत में और विशेषकर हिन्दी में स्थिति अभी बहुत दूसरी है । जर्मनी में केवल एक प्रकाशक ने ही गीतांजलि का ५०,०००,०० (पचास लाख) का संस्करण बेचा । क्या कारण है कि हिंदी में ५०० किताबों को मिलाकर भी इतने का संस्करण नहीं हो पाता, खैर शायद मैं अपनी मूल बात से भटक गया हूँ । मेरा तात्पर्य केवल यह है कि मैंने विश्व कवि की राष्ट्रीय स्तर पर १००वीं वर्ष गाँठ मनाने के उपलक्ष में परिष्कृत अनुवाद के ताजे पुष्पो से पूजा की थाली सजाने का प्रायास किया है ताकि मैं उस आत्मा के दिव्य भाल पर उचित रोचन लगाते हुये हिन्दी को अधिक देदीप्यमान कर सकूँ ।

इन अनूदित गीत-गजरों में गुरुदेव की आत्मा कहाँ तक गमक रही है और मैंने कहाँ तक अपनी कालिमा से उसे बचाकर रखा है यह तो विद्वान आलोचक ही बताएंगे ।

वस्तुतः किसी भाषा के पद्य-साहित्य का अन्य भाषा में अनुवाद करने का कार्य कठिन ही नहीं असम्भव है । असम्भव इस अर्थ में कि प्रत्येक भाषा के अपने तत्त्व होते हैं , उसकी अपनी मात्रायें होती हैं और अपनी ही अभिव्यक्ति होती है । यदि हम एक भाषा के अर्थ-नियम (Semantic Law), अर्थ-विकर्ष (Deterioration of meaning), अमूर्तीकरण (Abstraction), अर्थोत्कर्ष (Elevation of meaning), ध्वनि नियम (Phonetic law) और ध्वनि-विचार (Phonology) को दूसरी भाषा में रखने का प्रयास करेंगे तो स्वाभाविक ही बहुत-सा सौन्दर्य नष्ट हो जायगा और जिसके न रहने से अनुवाद मूल कृति का वास्तविक

आनन्द न दे पायेगा । काव्य में उपर्युक्त तत्व अपना महत्त्व रखते हैं । कवि अपनी वाणी से आत्मसात कर, हृदय के स्रोत से काव्य का प्रस्फुटन करता है , किन्तु अनुवाद में हृदय से अधिक मस्तिष्क, बुद्धि और तर्क का प्रयोग होता है फलतः काव्य की मार्मिकता बहुत अंश में लुप्त हो जाती है । अनुवाद इसीलिये असम्भव है फिर भी अनुवादक-कवि जितना ही अधिक भावों को आत्मसात कर अपनी प्रतिभा के बल पर काव्य को प्राञ्जलता प्रदान करता है उतना ही सफल होता है ।

बंगला भाषा का अपना जो माधुर्य्य है, उसके उच्चारण में जो लोच है और जो उसका व्याकरणिक आधार है वह हिन्दी में नहीं । हिन्दी में अपनी सुन्दरता है, अपना व्याकरण है तथा अपना तत्व हैं । इसलिये जब हम बंगला के गीतों को हिन्दी के स्वरों में बाँधने लगते हैं तो उच्चारण परिवर्तन के साथ ही मात्रिक कठिनाईयाँ उपस्थित होने लगती हैं। ऐसी स्थिति में एक ओर जहाँ काव्य-प्रवाह (रिदिम) में अन्तर आता है वहीं छन्दों का रूप भी परिवर्तित हो जाता है । बंगला भाषा ह्रस्व प्रधान है, उसके काव्य में मात्रा की गिनती मात्रा से नहीं अक्षरों से होती है । रवीन्द्र की ही कविता की इन पंक्तियों का विश्लेषण देखिये ।★

(१) बनेर पाखी गाछे बाहिरे बसि बसि = १४ अक्षर
४ ४ ४ ५ २ २ = २१ मात्राएं

(२) बनेर गान छिल यत =६ अक्षर
४ ३ २ २ = ११ मात्राएं

(३) खाँचार पाखी बले शिखानों बुलितार = १४ अक्षर
५ ४ ३ ५ ५ = २२ मात्राए

★ निराला की पुस्तक 'चयन' देखिए ।

(४) दोहार भाषा दुई मत = ६ अक्षर

५ ४ २ २ = १३ मात्राएं

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंक्ति एक में २१ मात्राएं है और तीन मे २२, इसी प्रकार पंक्ति दो में ११ मात्राएं हैं और चार में १३ मात्राए है। हिन्दी काव्य-व्याकरण की दृष्टि से और पद्य-रचना के नियमो से उपर्युक्त काव्य सर्वदा दोषपूर्ण है किन्तु बंगला भाषा के अनुसार वह पूर्ण प्राञ्जल काव्य है क्योंकि पंक्ति १ और ३ में १४, १४ अक्षर हैं और पंक्ति २ और ४ में ६, ६ अक्षर हैं ।★

अब यदि हम हिन्दी काव्य में भी बंगला रिदिम को भरने का प्रयास करेंगे तो हिन्दी के छन्दों की छीछालेदर हो जायगी । ऐसी स्थिति मे काव्य के भावों को आत्मसात् कर उसे अपनी भाषा के उच्चारणानुसार सम्यक शब्दों को लेकर अपने छन्दों मे ढालना ही उचित होगा ।

भाषा, मात्रा और उच्चारण के ही सम्बन्ध में कुछ विचार डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'विचार और वितर्क' के 'कवि के रियायती अधिकार' नामक निबंध में रखे हैं जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक समझता हूँ ।

" संस्कृत और हिन्दी के छन्दों में दो बातें लक्ष्य करने की है । पहली तो यह की हर आठवीं मात्रा पर स्वर का झुकाव होता है और दूसरी यह की सगण को विशुद्ध उच्चारण की कसौटी पर खरा उतारने की चेष्टा की जाती है । उर्दू का कवि इस बात की ओर से एकदम निश्चिन्त है, क्योंकि उसे छन्द शास्त्र की मर्यादा की उतनी परवाह नही है। जितना अपनी भाषा के लचीलेपन पर विश्वास......... ।

★ हिन्दी में भी अक्षर मात्रिक छंदों के गढ़ने की आवश्यकता अनुभव की गयी है। सुमित्रानन्दन पंत की पुस्तक 'उत्तरा' की भूमिका का पृष्ठ २५ देखिये।

"अपने उच्चारण को विशुद्ध संस्कृत से मिलता हुआ समझना भूल है । हिन्दी के अपने स्वर हैं, अपने छन्द हैं और हैं अपने राग, अगर संस्कृत उच्चारण के साथ हिन्दी का गठबन्धन किया जायगा तो उसकी वही अवस्था होगी जो वैदिक उच्चारण के साथ लौकिक संस्कृत छन्दो के गठबन्धन से हुई । वह क्रमशः जीवित भाषा से दूर होती जायगी और अन्त में मृत हो जायगी ।

(लिपि-विहीन लोग-गीतों के जीवित बने रहने का और सामान्य जनता का उसके प्रति विशेष आकर्षण बने रहने का मूल कारण भाषा का लोच है ।)

" .... बंगला में एक बार संस्कृत छन्दों में रचना करने की हवा चली थी, लेकिन वह अब एकदम बन्द है । हिन्दी में भी उसका बहिष्कार हो चुका है , पर छन्दों का बहिष्कार तो बहिष्कार नहीं है । छन्दों के बहिष्कार का सच्चा अर्थ है उच्चारण की यथार्थता का रक्षण ।"

द्विवेदी जी ने आगे चल कर फिर स्वर की चर्चा करते हुये लिखा है - * " .... उर्दू का कवि भी दीर्घ स्वर को प्रसारित करके ह्रस्व कर सकता है और बंगला का कवि भी वैसा करने में स्वतन्त्र है पर गरीब हिन्दी का कवि न तो दीर्घ स्वर को दो ह्रस्वों में बदल सकता है और न एक ह्रस्व स्वर के रूप में उच्चारण कर पाता है । करता है हलत वर्ण का स्वरान्त उच्चारण, पर एह समझ कर कि वस्तुतः वह ऐसा नही कर रहा है । ......

"इस सारी विवेचना का निष्कर्ष यही है कि खड़ी बोली के कवि को रियायती अधिकारों का न मिलना कुछ गर्व की बात नहीं है, दोष हो

★ विचार और वितर्क

सकता है ।

"शायद हिन्दी के कुछ ऐसे छन्द अवश्य हैं जो रियायती अधिकार के अभाव में ही भले जान पड़ते हैं । मगर यह बात तो कवि की इच्छा पर होनी चाहिये कि वह कला के सौंदर्य में भाषा और भाव का सामंजस्य रखते हुये रियायती अधिकारों का प्रयोग करे या न करें । "

उपर्युक्त विचारों को रखने का उद्देश्य यह है कि प्रस्तुत अनुवाद में गीतों को गेय करने के लिये और भाषा में अधिक लोच लाने के लिये मैंने यदा-कदा रियायती अधिकारों का साधिकार प्रयोग किया है और जो भावों की गुरुता तथा अनुवाद की सीमा की दृष्टि से अनिवार्य भी लगे । इस रियायती अधिकार में 'ए' के दीर्घ उच्चारण को कहीं कहीं पर लघु करके 'एक' का 'इक' अथवा मेरा का उच्चारण 'म्रेरा' के रूप में प्रयुक्त किया है । गीत संख्या दो में अलसाई को संक्षिप्त कर अलसई शब्द बनाया है और गीत संख्या तीन में --"और न मुझको कहीं कोई भी रोक सकेगा " में कोई का उच्चारण 'कोइ' हो रहा है । ये कुछ प्रयोग जानबूझ कर करने पड़े । वैसे यह सारी खटकन थोड़े परिवर्तन से ही दूर हो सकती थी, जैसे उपर्युक्त पंक्ति को यदि यों लिख दिया जाये --
'और न कोई मुझको पथ पर रोक सकेगा ?' तो पंक्ति बिल्कुल गतिमय हो जाती है और पाठकों को इस छोटे से परिवर्तन से जो अर्थान्तर उपस्थित होता है वह तुरन्त पकड़ में भी नहीं आता । बंगला की मूल पंक्ति है ----

तोमार जानिले नाहि के हो पर

नाहि कोनो बाधा, नाहि कोनो डर

★ ज़मीन को ज़मी, आसमान को आसमां, ज़ुबान को ज़ुबाँ आदि आदि ।

'नाहि कोनो माना' का परिवर्तन हुआ है -- ' और न मुझको कहीं कोइ भी रोक सकेगा' यह बात तो हुई अनुवाद करने की , किन्तु मूल गीत लिखने में भी यदि कहीं कोई कवि सोलह आना ऐसे ही कुछ भाव एक विशेष छंद के साथ चलते हुये भरना चाहता है तो शब्दों की अकड़ के साथ वह क्या करे ? क्या ऐसा प्रचलन नहीं हो सकता कि शब्दों को (खड़ी बोली के हैं तो क्या हुआ) थोड़ा सा मोड़ दिया जाय अथवा उनके उच्चारण में लोच मान ली जाय । प्रयोग ही प्रयोग से एक प्रथा चल निकलती है और फिर वे प्रयोग ही एक नया गुल खिलाने लगते हैं । आधुनिक 'नई कविता' मात्र प्रयोग के रूप में आई किन्तु अब ऐसा अनुभव होता है कि कुछ भाव ऐसे भी हैं जो मात्र उसी शैली में व्यक्त हो सकते हैं , ऐसी स्थिति में क्या गीतात्मक काव्य में कोई नया प्रयोग नहीं हो सकता ? समय के साथ शब्द घिसते हैं मिटते हैं और बनते हैं । हिन्दी में गीतात्मक काव्य सृजन करने वाले यदि शब्दों में कुछ नये प्रयोगों को लेकर कोई नया चमत्कार पैदा कर सके तो मैं समझता हूं कि हिन्दी के काव्य-पाठकों की जो अरुचि आज की नई कविता के प्रति सामान्य रूप से हो गयी है वह नया आकर्षण पा सकती है और कोई कारण नहीं कि जो भीड़ मुशायरों में उमड़ती है उससे अधिक भीड़ कवि सम्मेलनों में न उमड़े (वैसे मै कवि सम्मेलनी कविताओं को मानक मापदण्ड नहीं मानता) खैर यह स्थान इस विषय में अधिक डूबने का नहीं हैं, फिर भी प्रसंगवश कुछ कहना आवश्यक हो गया ।

यहीं पर एक बात और कहना आवश्यक समझता हूँ । मै भाषा को भाव की अनुगामिनी मानता हूँ क्योंकि इसका जन्म ही भावाभिव्यक्ति की पूर्ति के लिये हुआ है फलतः भाषा के सामने भावों को न मुखरित होने देना काव्य के साथ न्याय नहीं है । मैंने भावों को भाषा से अधिक प्रश्रय दिया है फिर भी यथासम्भव भाषा को विकृत होने से बचाता ही

नहीं रहा हूँ उसमें लालित्य भी पैदा करने का प्रयास किया है ।

बंगला भाषा की क्रिया में लिंगभेद नहीं है इस कारण प्रायः कवि की अन्तरवाणी को समझना कठिन हो जाता है । कवि की अनुभूति विरल होती है । वह कभी अपने को नारी स्वरूप देखता है (हिन्दी में कवि पंत ने प्रायः इसी रूप में अपने को देखा है) तो कभी विकट पुरुष-प्रेमी सम । वह कभी प्रकृति-प्रेयसी के साथ अभिसार करता है तो कभी स्वयं प्रकृति का अंग बन जग-सृष्टा की प्रेयसी बनना चाहता है । ऐसी स्थिति में कभी कभी बंगला का अनुवादक भ्रम में पड़ जाता है । गीतांजलि ही में मैंने एक गीत पुरुष-रूप में अनुदित किया है --

गा न सका वह गीत जिसे मैं गाने आया

वीणा के तारों का स्वर रह गया साधता

गाने की जो साध जगी थी सुप्त रह गयी

सारे दिन सम मीड़ और स्वर रहा बाँधता

इसी गीत को 'प्रवासी' जी ने यों लिखा है --

यहाँ जो गीत गाने को चली

वह गीत गा न सकी

रही स्वर साधती केवल

सदिच्छा को निभा न सकी

उन्होंने स्त्री का रूप लिया है, सो यह उनका दोष नहीं है, भाषा की बात है । इस प्रकार हम देखते हैं कि अनुवादक का कार्य एक दुःसाहस मात्र है ।

इस अनुवाद में गीतों के भावों को इस रूप में हिन्दी कविता में लाने का प्रयास किया है कि कोई भी भाव यथासम्भव मूल गीत से न तो वंचित हो और न अपनी ओर से जोड़ा हुआ हो । इस विशेषता को

रखने के लिये भिन्न भिन्न मात्राओं के विभिन्न छन्द प्रयुक्त किये गये हैं । कुछ ऐसे छन्द भी हैं जो अपने ढंग के नये प्रयोग हैं (किन्तु इस प्रयोग में आज की 'नई कविता' में प्रचलित छन्दों के प्रयोग से कोई सम्बन्ध नहीं है) भावों की सन्निहिता के कारण एक ही गीत में प्रायः भिन्न मात्राओं की पंक्तियाँ बद्ध की गयी हैं । इस क्रिया के लिये मानसिक तरंङ्गो पर विशेष अंकुश रखने की आवश्यकता पड़ती है फिर भी गति मे अवरोध रखना अनुचित ही होता, इसलिये काव्य के सूक्ष्मतम् ताने बाने भी अपनाये गये ।

मैंने अपने अनुवाद में गीतांजलि से सम्बन्धित सभी अंग्रेजी व हिन्दी के उपलब्ध साहित्य का तथा निराला जी की वाणी से प्राप्त अन्तर-रस का सामंजस्य किया है ।

इस अनुवाद में जो शीर्षक दिये गये हैं वे मूल पुस्तक में नहीं हैं किन्तु गीत के सम्बोधन में क्योंकि शीर्षक बड़े सहायक होते हैं इसलिये उन्हें दे दिया है । शीर्षकों से पाठक गीत विशेष के सम्पूर्ण भावों का प्रतिनिधित्व पाने का प्रयास न करें ।

पुस्तक के परिशिष्ट में रवीन्द्रनाथ जी के पचास मूल गीतों की प्रथम पंक्ति देव नागरी लिपि में दे दी है, ताकि साधारण पाठक उनको पढ़ कर अनुवाद की गुरुता को और निकट से समझ सकें तथा मूल गीतों से भी मिलान कर सकें ।

परिशिष्ट में ही रवीन्द्र नाथ जी की संक्षिप्त जीवनी उनकी दस पीढ़ियों के साथ तथा उनके सम्पूर्ण पद्य-साहित्य की क्रमबद्ध तालिका भी दे दी है ।

अन्त में मैं उन सभी साहित्यकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनका रंचमात्र साहित्य भी मुझे इस कार्य के लिये प्रेरणा दे सका हो

अथवा पुस्तक का श्रृंगार बन गया है । मैं अपने मित्रों को क्या धन्यवाद दूँ उनसे यदि मुझे कोई सहायता मिली है तो वह अपेक्षित ही थी फिर भी मैं चित्रकार रामबिलास गुप्त, सोना घोषाल, नरेन्द्रनाथ चटर्जी, द्विजेन्द्रनाथ मजूमदार, सत्यधन घोष, कृष्णमनोहर सक्सेना, कवि राजेन्द्र तिवारी, जीवन शुक्ल, केशनी प्रसाद चौरसिया, आनन्द शंकर एवं जय गोपाल मिश्र का आभारी हूँ । इनकी प्रेरणा ने ही मुझे यह कार्य कर डालने का बल दिया । मैं प्रयाग की अनेकानेक साहित्यिक गोष्ठियों के सदस्यों के प्रति भी आभार प्रगट करना चाहता हूँ, क्योंकि इन्हीं गोष्ठियों में अपनी साहित्य-साधना जगाने का वातावरण मुझे मिला है ।

हाँ श्रद्धेय डा० राम कुमार वर्मा व डा० उदय नारायण तिवारी के स्नेह और प्रोत्साहन को मैं शायद कभी नहीं भूल सकूँगा । उन्होंने मेरे इन गीतों को बड़े ध्यान से सुना और मुझे इस कार्य को कर डालने की शक्ति दी ।

मेरे इस कार्य का यदि विद्वत् समाज में उचित आदर हुआ तो आत्म संतोष होगा और आगे कार्य करने का बल मिलेगा ।

६५ चक — कैलाश कल्पित

इलाहाबाद-३ — ३-३-१६६१

१ - वन्दना

अपनी पद-रज तक नत मस्तक मेरा कर दो,
आँखों के पानी में मेरे अहंकार को, ईशा डुबा दो ।
अपनेपन को दे महत्त्व मैं दिखलाता हूँ अपनी लघुता
अपने के ही फेरे दे दे, प्रतिक्षण जर्जर होता जाता ।
नैन-नीर में मेरे सारे अहंकार के पोंग डुबा दो
अपनी पद-रज तक नत मस्तक मेरा कर दो ।

व्यक्त नहीं कर पाता निज को,
संसारी कामों में फँस कर ।
मेरी दिनचर्या में ही प्रभु
तू अपनी इच्छा पूरी कर ।
भीख माँगता हूँ मै तुझसे दे दे मुझे चरमगति शान्ति ।
मेरे प्रभु ! मेरे जीवन में भर दे अपनी उज्ज्वल कान्ति ।
मेरे हृदय-कमल की छाया में
प्रहरी ! तुम वास बना लो
आँखों के पानी में मेरे
अहंकार को ईश ! डुबा दो ।

★ ★ ★

२ - निष्ठुर दया

थी हमारी वासना सीमा - रहित
करुण-क्रन्दन नित मेरा निस्सीम था
कठिन अंकुश अस्त्र से फिर भी तेरे
मैं अनल के ताप से, प्रभु ! बच गया ।

दया निष्ठुर, यह तेरी
जीवन के कण-कण में बसी ।

मैं न भिक्षा मांगता तुझसे, प्रभो !
प्राण, मन, आकाश, तन अरु ज्योति की
योग्य इतना ही बना दे, हे प्रभो !
लालसाओं से बचूँ मैं नित्य की ।

दान होगा यह महा, मेरे लिये ।

मैं लिये उन्मेष पलकें अधजगी
या थकी-सी आँख कुछ-कुछ अलसई
खोजता तुझको फिरा हूँ, पंथ पर
किन्तु निर्मोही ! तू छिपता ही गया ।

भेद इसका अब छिपा मुझसे नहीं ।

अतल निर्बल वासना के जाल से
तू बचाकर मुझे पावन कर रहा
लीन हो जाऊँ, तुझी में इसलिये
तू निरन्तर योजनाएँ रच रहा

ये तेरी निष्ठुर दया, परिचित मेरी
ये तेरी निष्ठुर दया, परिचित तेरीही

★ ★ ★

३- परिचय

कितने अन्जानों से तूने है मेरा परिचय करवाया
कितने ही घर-घर में तूने मेरा है परिवास बनाया
बन्धु अरे ! तू दूरस्थों को सदा-सदा से गले लगाता ।

आवागमन

छूटा पुराना घर, नव गृह में जाने में चिन्ताएं जागीं
कौन मिलेगा वहाँ हमारा, कौन वहाँ होगा अनुरागी
मैं यह भूला बात कि नव-गृह में भी तेरा साथ रहूँगा
तू चिरपरिचित, तुझे वहाँ भी मैं अपना आत्मीय कहूँगा
बन्धु अरे ! तू दूरस्थों को सदा-सदा से गले लगाता ।

नव जीवन में

लोक और परलोक जहाँ भी तू रक्खेगा,
जीवन मरण, सभी पर तेरा साथ रहेगा ।
जन्म-जन्म का जब चिर परिचित साथी होगा
तो फिर मुझसे कौन अपरिचित कहीं रहेगा ?
नहीं कहीं भी जाने से मैं भय खाऊँगा
और न मुझको कहीं कोई भी रोक सकेगा ।
बन्धु अरे । तू दूरस्थों को सदा-सदा से गले लगाता ।

★ ★ ★

४- वरदान

विपदाओं से मेरी रक्षा करो, प्रभो ! तुम'
—तेरे द्वार नहीं ऐसा वर लेने आया ।
मैं विपत्तियों से रंचित भयभीत न होऊँ,
तुझसे मैं हूँ यह वरदान माँगने आया ।

व्यथित चित्त को ढारस देने की भिक्षा मैं नहीं मांगता
दुःख पर विजय सदा मैं पाऊँ, ऐसा आशीर्वाद चाहता
यदि तेरा सम्बल न मिले तो, नहीं दीन बन, अवश बनूँ मैं
संसारी-छल-कपट, निरर्थक-अहित आदि के साथ रहा मैं
मेरा अन्तर इन प्रतारणाओं के संग भी क्षीण हुआ न ।

'मुझे बचा लो'
—तेरे दर पर, यह वर नहीं मांगने आया,
संकट-सागर में तिरने की
—तुझसे शक्ति मांगने आया;
मेरा हलका भार करे तू
—नहीं याचना मैं यह करता,
चाह यही, कि भार वहन कर भी मैं पथ पर जाऊँ बढ़ता ।

सुख के भरे क्षणों में, - तेरे नतमस्तक दर्शन कर पाऊँ,
और दुःखी रातों के उपहासों में शंकित रह ना जाऊँ ।
मैं ऐसा वरदान चाहता,
ऐसा मैं वरदान चाहता ।

★ ★ ★

५- अन्तर्विकास

हे जीवित संसृति के जीवन !

सुन्दर, विकसित, निर्भय उज्ज्वल,
उद्यत, जागृत, निर्लिप्त, निर्मल ।
शंका रहित करो अन्तरमन,
हे जीवित संसृति के जीवन !
विकसित करो, मेरा अन्तरमन ।

निखिल विश्व-सा, मम-अन्तस्तल उन्नत कर दो
मेरे उपकरणों में अपना, मदमाता-सा गायन भर दो

अपने चरण कमल पर मेरे
मन को स्थिर करो - करो , हे !

मुझको तुम आनन्दित कर दो
आनन्दित मुझको तुम कर दो
हे जीवित संसृति के जीवन
तुम अन्तरमन विकसित कर दो ।

* * *

६ - नित्य नवीन

प्रियतम् मेरे प्राणों में तू
नित नये नये रूपों में आ ।

गंधों में आ
वर्णों में आ
तन की रोमाञ्चित सिहरन बन
निर्झर-उल्लास, सुधा बन आ
मम मुग्ध मुँदे नयनों में आ

प्रियतम मेरे प्राणों में तू
नित नये नये रूपों में आ ।

हे उज्ज्वल रे !
हे निर्मल रे !
सुन्दर, स्निग्ध प्रशान्त अहे !
मनहर मेरे, सुख-दुःख में आ,
नित नैमित्तिक कामों में आ,
मेरे समस्त कार्यों का तू
नित चरम-लक्ष्य बन-बन कर आ,
मेरे प्रियतम !
प्राणों में आ ।

* * *

७- मन की टीस

इस जीवन में यदि अब तुझको देख न पाया
काँटे-सी नित मन में मेरे बात चुभेगी,
आजीवन यह बात नहीं भूलेगी मुझसे
सोते-जगते मुझको यह बेचैन करेगी ।

जगत-हाट पर कितने दिवस बिताए मैंने
मेरे दोनों हाथों में धन कितना आया !
किन्तु तृप्ति मेरी कब उससे हुई कहो, प्रभु !
फिर-फिर खटकी बात, तुझे मैं देख न पाया ।

जब भी आलस के वश बैठा पथ के तट पर
और जभी विश्राम हेतु कुछ लेटा थक कर
तभी ध्यान आया, प्रयास ये, बहुत निरर्थक
जागी फिर तेरे दर्शन की चिन्ता, प्रियवर ।

सोते जगते रहती चिन्ता ये ही मुझको
मुझ नगण्य को हाय कहीं तू भूल न जाए
नाच रंग हो, घर में चाहे जितना लेकिन
'तू आयेगा नहीं' - सोच, हिय बैठा जाए ।

कभी वेदना नहीं हृदय से मेरे मिटती
'भूल न जाए मुझे कहीं तू' - शंका जगती
सोते जगते दिवस रात मानस में रहती
प्रति-क्षण प्रति-पल बहुत सताती, पृथक न होती ।

★ ★ ★

८- कृपण मै

भीख जब मैं मांगता था, उस समय
गाँव के प्रति-द्वार पर भिक्षुक बना
दूर पर देखा तुम्हारा स्वर्ण-रथ
स्वप्न जैसे तिमिर में कोई तना

हृदय में निस्सीम विस्मय जग उठा
कौन महराजा इधर को आ रहा
शेष क्या दुर्भाग्य की घड़ियाँ हुईं
भाग्य का तारा गगन पर छा रहा

हो गया, स्तब्ध होकर मैं खड़ा
'स्वर्ण मुद्राएं लुटेगीं अब यहाँ'
-सोच कर यह, धूल को देखा किया
मोहरें खन खन गिरेंगी अब वहाँ

झोलियाँ राजा भरेगा रंङ्क की
दान करने कर उठेंगें भूप के
मुक्त होऊँगा सभी दारिद्रय से
सहज दर्शन भी मिलेंगे रूप के

रथ अचानक उस जगह आकर रुका
मैं खड़ा था जिस जगह आशा भरा
नेत्र तुझसे चार मेरे हो गये
चरण तूने यान से नीचे धरा

भाग्य का मैं सूर्य देखूँगा उदय,
-जिस समय सोचा, तभी कर खोलकर
मांग बैठा तू, -" मुझे दे भेंट वह

जो मुझे देने को लाया था इधर "

भीख मांगी भूप ने थी रंक से
यह अजब उपहास था मेरा बड़ा
बहुत विस्मय गत हुआ पर क्या कहूँ
दान मुझको उस घड़ी देना पड़ा

संकुचित हो खोल झोली धान की
एक कन ही दे सका मैं दान को
किन्तु फिर आश्चर्य में अति हो गया
भीख की झोली खुली जब शाम को

बहुत भिक्षा मिल गयी थी धान की
किन्तु कनकी स्वर्ण की भी एक थी
और अति विस्मय भरी जो बात थी
माप उसकी और कन की एक थी

मैं फफक कर रो-पड़ा इक ३ रगी
कोसने मैं बुद्धि को अपने लगा
मूर्ख कितना था, न दी झोली तुझे
कृपण मैं; क्यों ज्ञान मुझमें ना जगा !

६- रात्रि-प्रतीक्षा

सघन-घन घन पर जमे रे !
तिमिर का अवसाद छाया,
इस गहन पल में मुझे क्यों
द्वार के बाहर बिठाया ?
मैं प्रतीक्षित हूँ अभी भी, प्रयतमें !

सांध्य के नित बालपन में
दिवस का अवसान आता
मैं विविध संसाधनों में
विविध जन में व्यस्त रहता

मैं यहाँ हूँ आज, मेरी
परिधि में है सान्ध्य बेला ।
एक दर्शन लालसा हित,
मैं यहाँ बैठा अकेला ।

यदि नहीं दर्शन दिए, प्रिय !
अरु उपेक्षा आज भी की
तो भरी बरसात की यह
रात फिर कैसे कटेगी ?

निर्निमिषः देखता हूँ दूर के उस मलिन नभ को
पवन में मन बादलों सँग, व्योम क्रीड़ा कर रहा है ।
इस गहन पल में मुझे क्यों
द्वार के बाहर बिठाया ?
मैं प्रतिक्षित हूँ अभी भी
प्रियतमें ! मम प्रियतमें !

★ ★ ★

१०- सोने की थाली

मैंने दुःख में भरे आंसुओं की माला से
तेरी कंचन की थाली को आज सजाया
माता ! मानो मुक्ताओं को गुंफित करके
मैंने सुन्दर कण्ठहार तुझको पहनाया
तेरे चरणों मे शशि-रवि-नग जड़े हुए हैं
किन्तु सुशोभित वक्ष अश्रुओं की माला से ।

धन अरु धान्य संपदा तेरी,
कर यथेष्ट उपयोग मुक्त-मन ।
मुझको जो देना है दे दे
इच्छा नहीं तो कुछ भी मत दे ।
मुझको तो दुःख ही उपहार ।

मुझसे प्यार किया है जिसने
देय सभी उसका उपहार
पूर्ण पारखी तू है मेरा
जिससे तुझको मिले तृप्ति
वह ही तू कर अब ।

* * *

११ - आषाढ़ की एक संध्या

संध्या आषाढ़ की, देखो तो सघन हुई
रह रह के बरसी, लो जलधारा मगन हुई ।

दिन के अवसान प्रहर,
चिन्ता में तू डूबा,
कुटिया के कोने में,
बैठा है क्यों ऊबा ।

मुझको तू बतला दे
जल-कण से युक्त वात ।
जूही के उपवन में
जा, कहता कौन बात ?

संध्या आषाढ़ की देखो तो सघन हुई
रह रह कर बरसी, लो जलधारा मगन हुई ।
मेरे हिय-सागर ने
अनुपम तरंग गही
पर वह अनुरूप तट
पागल-सी, खोज रही ।
ओस स्निग्ध फूलों की मदमाती गंध ने
मेरे प्रिय प्राणों को, विचलित कर डाला है
रातों के सभी प्रहर क्रमगत जो रिक्त हुए
भरता किन गीतों से ? कहाँ राग-माला है

मन मेरा व्याकुल, रे ! मुरली हूँ खो बैठा,
रह रह कर जल धारा, बरस रही मगन हुई,
संध्या आषाढ़ की देखो तो सघन हुई

★ ★ ★

१२- सावन-घन

सावन-घन की घनी छांव में
नीरव रजनी सम तुम छुप-छुप,
दृष्टि बचा कर चले न जाना
प्रातः की बेला में गुपचुप ।

कोलाहलमय पूर्व - पवन ने
व्यर्थ किसी को अरे ! बुलाया ।
नेत्र बन्द हैं आज प्रात के
नभ-मुख पर घन-पट लहराया ।

घर-घर के पट बन्द, शिखर-वन
से है लुप्त हो गया गुंजन ।
किसकी यहाँ प्रतीक्षा करता,
निपट अकेला, पथ यह निर्जन

एकाकी ! हे सखे !! प्रियतमें !!!
मेरा अन्तर-द्वार खुला है ।
ऐसे लुप्त अरे ! मत होना,
जैसे जग को स्वप्न मिला है ।

* * *

१३- स्वर जाल

कैसे गाते हो राग, प्रिये !
इतने सुन्दर ?
बन गये मन्त्र ने सभी गीत
जो हुए मुखर ।

धरती के कण-कण में तेरा है गीत भरा
पाषाणों की छाती से निकली शत धारा
इच्छा जब की, मैं कलकल स्वर का करूँ गान
रुँध गया गला, मैं विवश हुआ, रुक गयी तान ।

कैसे गाते हो राग, प्रिये ।
इतने सुन्दर ?
बन गये मन्त्र वे सभी गीत
जो हुए मुखर !

कैसा अद्भुत स्वर-जाल बुना
जो बहुत सूक्ष्म, पर बहुत घना
देखा तो दिया दिखाई ना
भागा तो चारों ओर तना
कैसे गाते हो राग, प्रिये ! इतने सुन्दर ?

★ ★ ★

१४- अभिसार

वर्षा की
झर-झर बेला में
मेरे प्राणों के, हे साथी !
पिय के मिलन हेतु
बाहर को,
कहाँ चल दिये, तुम एकाकी ।

आशाहीन क्षणों में देखो नभ तक रोता
मेरी आँखों में तिल-भर भी नींद नहीं है
प्रियतम ! खोलो द्वार
प्रतीक्षा तेरी ही है
चिन्तित हूँ बाहर, कि दिखता मार्ग नहीं है ।

घोर तिमिर के अंतराल में
अथवा दूर सरित के तट पर
प्राण सखे ! क्या चला गया तू -
किसी भयानक निर्जन पथ पर ?

★ ★ ★

१५- दूर देश का यात्री

यात्रिक हूँ मैं दूर देश का ।

मुझे रोक कर नहीं बिठा सकता है कोई
सुख-दुःख के झूठे बन्धन हैं इस जगती पर
बाँध नहीं सकती मुझको घर-दीवारें भी
जाल वासनाओं का झूठा पड़ा गात पर ।
अवगुण्ठन खुल जायेगा प्रत्येक तार
यात्रिक हूँ मैं दूर देश का ।

पथ पर चलते जी - भर गाने मैं गाता हूँ
मेरे देह-दुर्ग के सारे द्वार खुले हैं
अब विषयों की सभी शृंखला टूट चुकी है
अपने पथ के आज खुले सब मार्ग मिले हैं
पाप-पुण्य के भंवरों से मैं मुक्त हो चुक
यात्रिक हूँ मैं दूर देश का ।

सभी भार अब मेरे हलके हुये धरा के
निःशब्दों में नभ से मुझे बुलाता कोई
श्रवण हो रही वंशी की ध्वनि अविरल स्वर से
मेरे प्राणों में ही बैठा गाता कोई
अर्थ समझता हूँ मैं इस गम्भीर गीत क
यात्रिक हूँ मैं दूर देश का ।

उस विशेष क्षण से अभिज्ञ है कौन ? बताओ
पहर कौन था निशा - काल का जब मैं आया
अर्ध रात्रि में गीत सुप्त थे सभी खगों के
निर्निमिष थे मात्र नयन ही, तम था छाया

मिला किसे आभास उस प्रहर, शेष-रात्रि का
यात्रिक हूँ मैं दूर देश का ।

किसे पता किस दिन है मुझको किस घट जाना
कौन नक्षत है जो दीपक की ज्योति बनेगा
कौन पहर होगा जो केवल मेरा होगा
कौन कुसुम होगा कि जिससे वात बसेगा

अरे बतादो कुछ तो परिचय पहर काल का
यात्रिक हूँ मैं दूर देश का ।

१६- सागर में ज्वार

आज तो आनन्द के सागर में आया ज्वार है
सभी जन पतवार तेरी पकड़ कर बैठे हुए ।
बोझ तुझको जिस कदर भी लादना है लाद दे
किन्तु दुःख से पूर्ण तरणी है तुझे ही तारनी ।

कौन है जो पंथ पर बढ़ने से मुझको रोकता है
कौन है जो मौन होकर भी, मुखर हो टोकता है

प्राण जाते हैं अगर तो आज जाने दो उन्हें भी
इस तरह के भय-भरे हमने थपेड़े बहुत खाए
हमें तो है पार जाना, तैर करके हर लहर को ।

कौन जाने शिखर पर किस शाप ने मुझको बिठाया ।
कौन था ग्रह-दोष जिसने पद मुझे ऊँचा दिलाया ।
खींच कर अब डोर लंगर की, भरे हैं गीत के स्वर
गीत के स्वर अब भरे हैं, डोर-लंगर खींच कर ।

* * *

१७- विरह ताप

कितना व्यापक है, विरह ताप,
वन, पर्वत, सागर, नभ, प्रपात ।
तेरे ही कारण, हे अदृश्य !
प्रकटे धरती के सुघर गात ।

यह तेरी ही है विरह ज्योति
निशि - निशि भर जलती गगन बीच
तेरी ही गरिमा है, अदृश्य ।
बिन तेल, ज्योति जो रही सींच

तू ही मुखरित है, हे अदृश्य !
सावन - भादों के झर-झर से ।
तेरा आलोड़न प्रकट हुआ,
कम्पित पातों के हर-हर से ।

कितना उत्कट यह विरह-ताप,
प्रकटा घर-घर में जन-जन में ।
सुख में, दुःख में, शतरूपों में -
मानव की प्रेम कथाओं में ।

मेरे प्रति स्वर में विरह-ताप, मेरे गीतों में विरह ताप
हृद-गिरि-हिम, क्या ? बस विरह-ताप,
जब भी पिघला तब विरह-ताप
कितना व्यापक है विरह-ताप !

* * *

१८ - अब और नहीं

ढल गया दिन,
सान्ध्य वेला आ गयी, सखि !
सरित-तट पर रिक्त गगर ले चलो अब ।

गूँजते हैं सलिल-स्वर-निर्झर गगन में,
हो गया उद्विग्न नभ भी, तन-बदन में ।
कह रहा अनवरत दिव-स्वर आज मुझ से,
फिर भरो मृणमयी-गागर नये स्वर से ।
पथ बहुत निर्जन, नहीं साथी कोई अब,
सरित तट पर रिक्त गागर ले चलो अब ।
पवन चंचल हो गया है
प्रीति-सलिला नाचती है,
लौटकर आऊँ न आऊँ
कुटिल शंका जागती है ।
कौन मिल जाए डगर में कौन जाने
बँसरी वाला पकड़ले हाथ, फिर
माने न माने
हाय, तब तो बात ही बन जाय फिर सब,
सरित तट पर रिक्त गागर ले चलो अब ।

* * *

१६ - प्रेम संकेत

तुम्हारा प्रेम यही है।

पात-पात पर स्वर्ण रूप जो चमक रहा है

विदित मुझे, यह प्यार तुम्हारा झलक रहा है

तुम्हारा प्रेम यही है।

नभ में जो अलसाए घन निर्द्वन्द्व झूमते,

सुरभित-पुष्प के झोंके ले मकरन्द, घूमते।

मेरे मस्तक पर जो जलकण जम जाते हैं

वे तेरी ही गरिमा को नित बतलाते हैं

नयनों में नभ

प्रात समय का, निहित हो गया,

यह तेरा ही प्यार

मुझे सब विदित हो गया।

अपने मुख को

मेरी ओर झुकाया तूने,

हाय लगे लोचन से लोचन बातें करने।

मेरा हृदय तेरे चरणों का फूल बन सका,

यह था तेरा प्यार, जिसे मैं सहज पा सका।

* * *

२० - विश्व सभा

निपट तेरे गीत गाने के लिए
इस मही पर जन्म मेरा है हुआ
दे मुझे अनुमति कि गाऊँ राग मैं
है प्रतीक्षित आज जगती की सभा

मैं किसी भी योग्य विपुला पर नहीं
निरुपयोगी-प्राण गीतों में पले
जो खिलाए फूल सौ-सौ जतन से
हाय वे भी रह गए कुछ अधखिले

विकट सन्नाटा है आधी रात का
और देवालय में होती आरती
इस पहर में दे मुझे आदेश, प्रिय ।
तेरे गीतों की जगाऊँ भारती ।

प्रात की बेला में जब ऊषा हँसे
अरु सुनहले तार हों नभ में खिंचे
तब तेरे दरबार में मैं स्वर भरूँ
साध जीवन की यही, तुझसे वरूँ

विश्वरूपी सभा में गायन करूँ
प्रियतमे ! मुझको यही सम्मान दे ।
प्रियतमे । मुझको यही सम्मान दे ।

* * *

२१ - आह्वान

नष्ट करो हे !
नष्ट करो हे !
मेरे भय को त्रस्त करो हे !

हे प्रभु मेरे
मुख मत मोड़ो,
मेरे गहे-हाथ
मत छोड़ो ।
तू तो मेरे पास खड़ा था
मैं तुझको पहचान न पाया
दृष्टि न जाने कहाँ गड़ी थी
जाने कहाँ रहा भरमाया

मेरे अन्तर में प्रभु आजा,
हास्य-पुंज हिय में बिखराजा ।
बोल-बोल प्रभु मुझसे तू कुछ,
कर उद्धार बढ़ा कर-द्वै शुच ।

ज्ञान, हास्य अरु रुदन हमारे,
भ्रामक दीखे सभी किनारे ।
अब मेरे सम्मुख, प्रभु ! आजा,
हिय में उपजे मलिन, मिटा जा ।

* * *

२२ - तेरी मेरी लगन

तुझको
मुझसे मिलने की वह लगन लगी रे!
पथिक बन गया तू, अनादि से मेरे पथ पर ।
रवि-शशि से—
मुझको तेरा संकेत मिला है
गले मिलूँगी मैं प्रीतम से बाहें भर-भर ।

अगणित संध्या अरु प्रभात की पग-ध्वनि सुन-सुन
तेरे आने की गरिमा में आयु बिता दी
तेरे दूतों ने मुझको जी भर बहलाया
रखा प्रतीक्षित जीवन-भर, यह खूब सजा दी
अहे, पथिक ! क्यों आज न जाने,
प्राणों में नव-हर्ष भर गया ।
जिसका सुख कर सका व्यक्त ना,
वह मुझको आनन्द मिल गया ।

अरे !
आ गई क्या बेला, मुझसे मिलने की,
कर्त्तव्यों की साध कर गया, क्या मैं पूरी ।
मधु-मृदु-गंधी पवन
तेरा स्पर्श बताता,
बहुत निकट है पथिक हमारा
लो, वह आता ।

★★★

२३ - प्रचण्ड-प्रवाह

जिस प्रचण्ड गति से उसकी अनुभूति मिली है
अपने स्वर उस गति से, कवि ! क्या साध सकोगे ?
वीणा की गति, दिशा, भानु, शशि की आभा से
निश्चय ही, कवि : क्या छंदों को बाँध सकोगे ?

गति ही गति, विश्राम क्षणिक भी नहीं किसी को,
जिसको देखो, वही तीव्र गति बाँध रहा है ।
पीछे मुड़ कर नहीं देखने वाला कोई,
ऐसे में तू व्यर्थ साधना साध रहा है ।

उस आनन्दित पद-गति के संग
ऋतुएं नाच-नाच आती हैं
पृथ्वी में रँग, गीत, सुरभि भर
अपने आप चली जाती हैं ।

उनका जैसा तू अपने को
क्या अर्पण में दे सकता है ?
और डूब आनन्द-सिन्धु में
क्या सहभागी बन सकता है ?

* * *

२४ - अखण्ड-आशा

गा न सका वह गीत जिसे मैं गाने आया,
वीणा के तारों का स्वर रह गया साधता ।
गाने की जो साध जगी थी, घुल रह गयी,
सारे दिन लय, मीड़ और स्वर रहा बाँधता ।

शेष रही प्राणों में—
गाने की अभिलाषा ।
फूल, कली रह गया—
वायु में हिलता-डुलता ।

मेरी गलियों में जो नित छुप-छुप आता है,
केवल पद-ध्वनि से जो आना बतलाता है ।
उस अदृश्य, अनबोले प्रीतम के दर्शन हित,
पलक पाँवड़े बिछा-बिछा दिन ढल जाता है ।

घर में दीप जला न पाया
उसे बुलाऊँ भी तो कैसे ?
अपने घर में अतिथि बुलाऊँ
और बिठाऊँ ऐसे-वैसे !

मेरी उससे भेंट नहीं कुछ, फिर भी आशा मिलने की है
अन्जाने की पग-ध्वनि प्रतिक्षण, मिलने का इंगित करती है ।

* * *

२५ - राखी की डोर

हुआ रोमाञ्चित अंग-अनंग
छा गया आँखों में उन्माद
हृदय बँध गया, प्रेम की डोर
हो गया मुझसे महाप्रमाद

फूल-फल तरु-पल्लव को सींच -
हृदय से मेरे; तूने खूब
गगन के नीचे जल-थल बीच,
रची क्रीड़ा निज तनमन डूब ।

मिलेगा पथ पर वह या नहीं
बुलाया है जिसने इस राह
भटकना होगा अब या नहीं
हाय, मिल रही न इसकी थाह

किसी उपक्रम का गह कर हाथ
नयन के द्वार निजी आनन्द—
बन गया व्याकुल निर्झर रूप ।
विरह की चढ़ी विछली धूप ।

* * *

२६ - आनन्द-पर्व

मानव - रूप अकिञ्चन मेरा धन्य कर दिया-

धरती के आनन्द - पर्व में मुझे बुलाकर

अब तो लोचन रूप-सुधा, अनवरत पी रहे

मेरे कर्णों को मिलता है मधुर दिव्य स्वर।

इस उत्सव में

साँसों की बाँसुरी बजाऊँ,

यह तेरा आदेश

मुझे वरदान बन गया ।

रुदन-हँसी के

शूल-फूल लघु जीवन-तरु के -

स्वर साधन के

धागे में पिर, हार बन गया ।

मौन-रूप तेरे चरणों में अर्पण हूँ

वह घड़ी सुहाई,

तेरी जय, तेरे उत्सव में श्रवण करूँ

वह बेला आई।

धरती के आनन्द पर्व में आमन्त्रित कर,

मानव-रूप अकिञ्चन मेरा धन्य कर दिया ।

* * *

२७ - निःस्वर-वीणा

रूप-रत्न से भरा पड़ा है यह जो सागर,
डूब लगाता मैं अरूप अब इसमें गोता ।
मुक्ता-मोती मिले या नहीं, यह मत पूछो,
पर, इस तट से दूर न जाने का मन होता ।

अब यह नौका, घाट-घाट पर नहीं लगेगी,
जीर्ण हो गयी है, लहरों पर नहीं तिरेगी,
अब, इस को अमरत्व-जलधि में लय होना है ।

तारे जहाँ अनादि काल से गीत गा रहे,
और जहाँ पर घोर तिमिर के मंच सजे हैं,
मैं, प्राणों की वीणा के स्वर वहाँ भरूँगा ।

खूब लुटाऊँगा अनन्त में अपने स्वर को,
कर दूँगा मैं प्राण स्वर-रहित सदा-सदा को,
नीरव प्रभु के चरण-कमल पर फिर धर दूँगा ।

* * *

२८ - सैनिक आत्मा

प्रभु-गृह से वे आये जिस दिन
तेज तभी से क्षीण हो गया
शक्ति न जाने कहाँ खो गई
अस्त्र न जाने कहाँ खो गया
विनत हुए वे, दीन हुए वे
संकल-संकुल हुई दिशाएं
सहे प्रहार विजित सैनिक सम
धनुष-बाण सब कहाँ गँवाए ?
किन्तु वंही जब लौटे प्रभु-गृह
तेज ताप सब पुनः मिल गया
चिर प्रशान्त आनन्द चरमगत
उन आनन पर पुनः खिल गया
जग जीवन के सकल फलाफल
त्याग जगत में ही, वे सैनिक
लौटे दिव्य लोक को फिर जब
बदली सकल क्रियाएं दैनिक ।

★ ★ ★

२९ - वंशी काया

मम गीतों ने त्याग दिए आभूषण सारे
छंद-ताल-तुक-अहंकार-परिधान उतारे
अलंकार तो बाधक बनते पिया मिलन में !
निज गीतों से झंकृत स्वर में डूब डूब कर
मैं तेरे स्वर निज कर्णों में धार न पाता
कविता के आभूषण पर लोलुप होने से
तेरी कविता की वाणी का सार न पाता
सम्मुख तेरे गायक बन, अभिमान करूँ क्या!
कवि-कुल-भूषण ! अपने चरणों की रज दे दे
वंशी का सारल्य मेरे जीवन में भर दे,
और बाँसुरी के छिद्रों सम ही इस तन में
मेरी सांसों में तू अपना ही स्वर भर दे
छिद्र-छिद्र के सरगम से तू ही तू गूँजे ।

★ ★ ★

३० - एक दिन की बात

अनुभव मैंने किया एक दिन
जो कुछ था करना, कर डाला ।
जीवन का अन्तिम वितान है
बहुत दिनों तक डेरा डाला ।

शेष नहीं जीवन-पथ-रेखा
पार कर लिए लक्ष्य-द्वार सब
शेष प्रयोजन रहा न कोई
संबल भी अवशेष नहीं अब

जीवन से विश्रान्ति मिल सके
ऐसा मेरे मन में आया
जीर्ण, मलिन परिधान हुए हैं
जर्जर-रूप हुई मम काया

किन्तु अचानक मैंने देखी
तेरी लीला निपट निराली ।
निज इच्छा पूणार्थ प्रिये, हे!
तूने नव काया दे डाली ।

मेरे गीत पुराने हैं, पर
नूतन स्वर-मणि जड़े हुए हैं
हृद-तन्त्री से झंकृत होकर
नव गरिमा से फूट पड़े हैं ।

शेष हुई जब-जब पथ रेखा, नव रेखाएं तूने खींचीं ।
नित्य नवीना दृश्यावलियाँ, देखीं मैंने, तूने खींचीं ।

* * *

२१ - नत मस्तक

रहते जहाँ हैं अधम जन

धनहीन दीन अनादरित ।

प्रभु ! चरण हैं तेरे वहीं

करुणाँ वहीं तेरी द्रवित ।

नत हो शयन तक, विनत मन,

करता तुझे फिर-फिर नमन

पाता नहीं छू पद्म-पग,

हैं अतल में तेरे चरण ।

तू दीन-हीन दरिद्र बन

अति दलित जन में घूमता

मेरा अहम् झुकता नहीं

अपनी परिधि ही चूमता

धन-धान्य से परिपूर्ण जन में

बहुत तुझको ढूँढ़ता,

पर फिर समझ आती मुझे

अपनी चरमगत मूढ़ता ।

तू तो सखा उन लोग का

जिनका नहीं कोई सखा ।

तू बल बना उस वर्ग का

जिसको नहीं सम्बल दिखा ।

* * *

३२ - देवालय कहाँ ?

रे पुजारी !
भजन पूजन साधना
रख किनारे सब,
न कर आराधना ।

द्वार देवालय के तेरे बन्द क्यों ?
मुक्त-मन लुटता नहीं मकरन्द क्यों ?
हिय के तम में कौन सी पूजा वरी ?
देवता वह कौन
जिसकी अब तलक पूजा करी ?

अरे मन्दिर में नहीं है देवता
दृष्टि अपनी क्यों नहीं तू खोलता ?
कृषक धरती है जहाँ पर गोड़ता
श्रमिक जिस थल हुमक पत्थर तोड़ता
जहाँ श्रम को ही मिला अभिमान है
रे पुजारी बस वहीं भगवान है ।
धूप में तपते हुए जो जी रहे
ईंट गारा रात-दिन जो ढो रहे
जो भरी बरसात में भी भीग कर
खेत में धानों के बिरवे बो रहे

देवता रहता उन्हीं के बीच है
कमल है वह, अरु परिधि में कीच है

यदि पहुँचना है जलज के पास तक,
छोड़ निज परिधान के तू मोह को ।

* * *

३३- अवलम्बन

आनन्द तेरा हे, प्रभो !

मुझ पर हि अवलम्बित हुआ,

तेरा हुआ जब अवतरण

मुझसे हि प्रतिबिम्बित हुआ ।

भुवनेश्वर के प्रेम का

बनता रहा आवास मैं ।

होता नहीं यदि मैं, प्रभो !

करता किसे प्रतिवासमय ?

तूने बनाया है मुझे

संसार-वैभव भाग हर

मेरा ह्रदय तेरा बना

निर्द्वन्द्व क्रीड़ा नृत्य - घर

जीवन मेरा अवलम्ब बन

लीला तेरी करता प्रकट

मेरे ह्रदय को जीतने

सज-सज के होता तू प्रकट

प्रभु ! स्नेह तेरा भक्त के

ही ह्रदय में बसता रहा

सबके रहा अन्तर्निहित

फिर भी प्रथक हँसता रहा ।

★ ★ ★

३४- प्रकाश पुष्प

प्रबल ज्योति से युक्त, रश्मि के शतदल लेकर
नभ के नील सरोवर में सरसिज विकसा है ।
दिशि-दिशि में पंखुड़ियाँ बिखरीं फूट-फूट कर
तिमिर-मधुप अन्यत्र लोक को चला गया है ।
ज्योति-जलज के मध्य भाग में स्वर्ण कोष जो
आनन्दित हो उस आसन पर मैं बैठा हूँ ।
जग में बिखरे अन्धकार को धोने के हित
मैं परागसम शुभ्र प्रकाश जल बाँट रहा हूँ ।

नभ कम्पनमय, पवन पुलकमय
दिशा-दिशा हो गयी गीतमय ।
जीवन का नर्तन है चहुँ दिश
दिव का गति से हुआ समन्वय ।

जीवन के इस महासिंधु में डुबकी लूँ मैं
जगा रहा हूँ आज साध मैं, निज के तन में ।
प्राणों के इस अगम वरुण के सम्मुख छिति भी
दशों-दशा से प्राण भर रही है तनमन में ।
जहाँ कहीं भी प्राणी थे आवास बनाए
वहाँ-वहाँ से वसुन्धरा ने उन्हें बुलाया
नाच-नाच कर माता सम गोदी में लेकर
हर प्राणी को भोजन, भर-भर पेट खिलाया ।

गीत गद्य से पूर्ण तृप्त हो
स्वर्ण कोष आसीन रहा मैं ।
किन्तु धरा के आमन्त्रण से
अवनि-हृदय का अतिथि रहा मैं ।

हे प्रकाश !
मैं तुझे नमित हूँ
मम विषाद उन्मूलित कर दे ।
हे भू-माता !
नमन तुझे है
सकल मनोरथ पूरे कर दे ।

★ ★ ★

३५- करुण-किरण

जननी !
तेरे करुण - चरण का वास
प्रात की अरुण किरण में ।
मृत्युञ्जयी वाणी -
बिखरी है तेरी,
उस निस्सीम गगन में ।

वन्दन तेरा !
तू समस्त भुवनों में व्यापी;
स्तुति तेरी !
जग-जीवन के सभी कार्य में तेरी झाँकी ।

आज समर्पित तन-मन-धन -
तेरी पूजा में,
दया-सिक्त चरणों का तेरे -
मन्दिर शोभित अरुण किरण में ।

जननी ! तेरे करुण-चरण का वास
प्रात की अरुण किरण में ।

* * *

२६- विराट रूप

शैशव में हम तुम जब तक मिल जुलकर खेले
रंच लाज थी नहीं, वहाँ भय का भंजन था
परिचय कहाँ अपेक्षित था उन सरल दिनों में !
आनन्दित, उल्लसित तरंगों-मय जीवन था ।

नव प्रभात में तूने कितनी बार पुकारा
और सखा सम मुझे खेल में साथ खिलाया ।
सोम, शिखर, सर, सरित-शैल सम सुखद सहन में,
तूने मुझको, मैंने तुझको बहुत घुमाया ।

तब थे मैंने गीत तुम्हारे बहुत गवाए,
तेरे स्वर से अपना स्वर मैं गया मिलाता ।
चिन्ता क्या थी अर्थ समझने की मुझको तब,
पुलकित-हृदय विलक्षण सुख से मैं था गाता ।

अरे !
खेल के बाद
आज क्या देख रहा हूँ ।
रवि, शशि, नभ, क्षिति, हुए अचानक
स्वर से रङ्गित ।
द्युषद,
द्युलोक, द्युम्न
द्युति, द्युतिमा, धून धून हो,
सब की सब तेरे ही चरणों
में हैं बंङ्कित ।

* * *

३७- जीवन सरोवर

जब सूख जाय जीवन-सर-जल
हृद-सरसिज के सूखे हों दल
तब करुणा के बादल बन कर
तुम उमड़-घुमड़ आना प्रीतम ।

परिवर्तित हो जब मधु समस्त
जीवन का, कटुता बीच ग्रस्त ;
तब गीतों की गंगा बनकर
नभ से भू पर आना प्रीतम ।

जग के दस-दिश के कोलाहल
जब मुझे फाँस लें बन दलदल
तब हे प्रशान्त ! विश्राम-दूत का
रूप लिए आना प्रीतम् ।

जब मैं बैठा हूँ दीन-हीन
कुम्हलाया, सिमटा, उदासीन
तब नृप सम तुम मम-तन-निधान
के द्वार खोल आना प्रीतम ।

जब दृष्टि भ्रमित-वंचना भरे
लिप्सा की रज चक्षु बन्द करे
तब प्रचण्ड ओजस्वी प्रकाश
को साथ लिये आना प्रीतम ।

★ ★ ★

३९- बस एक बार

इस बार प्रिये जब तुम आना

तब नहीं लौट कर फिर जाना

दिन-पल वियोग में जो बीते

बन धूल उड़े रीते-रीते ।

प्राण-कुसुम को विकसित करने

तेरी करुणा के प्रकाश में,

जागा मैं अनवरत रात-दिन

पल-पल उलती कुटिल आश में ।

अरे कौन उन्माद व्याप्त था, तन में खोज रहा था किसको ?

पथ भूला-सा पथिक रहा मैं, इसका अरे ! पता था किसको ?

अब अपनी ध्वनि

मुझमें तू सुन,

धक-धक का स्वर

तेरी ही धुन ।

मेरे पाप-कोष जलवादे,

मेरे उर बल अग्नि बहा दे ।

★ ★ ★

३६- सिंहासन

ऊँचे सिंहासन पर
तू आसीन वहाँ था;
और यहाँ पर मैं
अपने स्वर साध रहा था ।
तेरे कानों तक इस स्वर की
ध्वनि जब पहुँची
अवरोहित हो तू
मेरे द्वारे पर आया ।

तेरी राज सभा में
अगणित स्वर साधक हैं
गुरुतम हैं, हैं महा तपस्वी, आराधक हैं ।
किन्तु तुच्छ मेरे गीतों ने
प्रेम जगाया,
तुझे किया स्पर्श, विश्व की गीत-सभा में ।

अहे सखे !
तू वरमाला ले नीचे उतरा,
मेरे स्वागत हित
मेरे द्वारे पर आया !

★ ★ ★

४०- नए-तार

जीर्ण तार, एक-एक कर उतार,
बाँध तू सितार में नवीन तार ।
योमहाट मिट गया
आ गयी है यामिनी ।
भर न अब मल्हार राग
घन रहे न सावनी ।

बाँध तू सितार में नवीन तार,
जीर्ण तार, एक-एक कर उतार ।

हृदय द्वार से तिमिर निहित कर,
सप्त लोक की शान्ति वहन कर

परि समाप्त हो गई आज, उन सब गीतों की
जिनके स्वर थे भरे पुराने वाद्य-गात में
नए तार में, नए-नए अब राग छेड़ दे
भूल पुरानी बात, डूब अब नयी बात में

जीर्ण तार एक-एक कर उतार,
बाँध तू सितार में नवीन तार ।

★ ★ ★

४१- वह आता है

नहीं सुनी क्या पग-ध्वनि उसकी ?
वह आता है, वह आता है, लो वह आया ।
प्रतिदिन, पल-पल,
प्रतिनिशि, युग-युग,
वह आता है, वह आता है, लो वह आया ।

कितने गाए गीत हृदय की लहरों में बह
पर सबकी ध्वनि-प्रतिध्वनि यह थी -
वह आता है, वह आता है, लो वह आया ।
वसन्त ऋतु में वन में आता
सावन-निशि में नभ पर छाता
नाहर-गाज सम गर्जित घन-रथ
को उसने निज यान बनाया,
वह आता है, वह आता है, लो, वह आया ।
दुःख के क्रम जो जब-तब आते,
वे उसका स्पर्श बताते ।
विहँसे-से जो सुख-क्षण आते
वे उसका ही रूप दिखाते
उसकी पग-ध्वनि हृद-स्पन्दन
उसकी करुणा से पुलकित मन
उसने प्रति उपक्रम से अपना, अग-जग को अस्तित्व बताया ।
वह आता है वह आता है, लो, वह आया ।

★ ★ ★

४२- प्राणों में भय

चाँदनी की इस सुहानी रात में
प्राण मेरे आज फिर चंचल हुये ।
पास तेरे बैठने का वर मुझे
मिल सकेगा या नहीं, बोलो प्रिये !

पद्म-लोचन दृग में भर पाऊँगा क्या ?
रूप का मैं पान कर पाऊँगा क्या ?
निर्निमेषी दृष्टि रख पाऊँगा क्या ?
रूप की तृष्णा बुझा पाऊँगा क्या ?

सोचता हूँ अश्रु-जल-सम गीत ये,
तेरे चरणों पर चढ़ा पाऊँगा क्या ?

है मुझे वरदान जो तेरा मिला,
भय मुझे है छीन ना ले तू कहीं ।
खोद धरती में कहूँ छिप जाऊँ बस,
मेरी शंका हर घड़ी डरपा रही ।

मिल रहा स्पर्श तेरा हाथ पर
भय मुझे, तू सामने ना ले बुला ।
प्राण मेरे, संकुचित हो जायेंगे,
हीनता के सिन्धु में जाता घुला ।

★ ★ ★

४३ - गीत-सुधा

मुझको गाने का इंगित जब मिला तुम्हारा,
वक्ष गर्व से फूल, फूल-सा लगा झूमने ।
अपलक दृग तेरे आनन पर मुग्द्‌ हो गये,
नयनों में श्रद्धा के आँसू लगे घूमने ।
द्रवित गलित हो तेरी गीत-सुधा में बदली ---
मम जीवन की अस्तव्यस्तता और विषमता ।
पक्षी-सम, साधन आराधन आनंदित हो
पांखों से जीवन में भरने लगे सरसता ।
मेरे गीत तुझे अतिप्रिय हैं,
मेरा राग तुझे मधुमय है ।
स्वर मेरे सब कर्णों को प्रिय
मेरी साध तुझी में लय है ।
ज्ञात मुझे है
इन गीतों के सम्बल के बल
तेरे सम्मुख आने का साहस कर सकता ।
फिर भी तेरे
निकट पहुँचने मे सकुचा कर
गीतों के ही पाखों से मैं तुझको छूता ।
गाने के मद में हूँ निज को भूला करता
तभी तुझे 'प्रिय', 'मित्र', 'सखा' सम्बोधित करता

★ ★ ★

४४- वसन्त

पट खुले मधुमास के, प्रिय !
अब हृदय का कमल तू अपना खिलाले ।
'मलिन है तू' - यह तेरा उपहास क्यों हो
तू हृदय का दीप-लघु अपना जला ले ।
भूल कर अपना-पराया, गगन में स्वर खग उड़ा दे,
हृदय गरिमा से सुवासित प्रेम की लहरें उठा दे ।
मुखर होती वेदना है
आज वन के वृन्त-दल से ।
क्षितिज पर छिति राह तकती
सजल दृग कर अश्रुजल से ।
खोजती है वायु दक्षिण की किसे ?
घर घर में जाकर
जागती है निशा भू पर,
किसी की आहट को पाकर
कान्त, हे !
तुझको बुलाने का किया आह्वान किसने ?

४५- नीरव-स्वर

है मौन भी तुम्हारा
स्वीकार नाथ मुझको
मम-तन-सदन में लूँगा
नीरव क्षणों के सुख को ।

राका प्रतीक्षित है
नभ दीप झिलमिलाए
अनिमेष नैन खोले
तुझको सदा बुलाए ।

मैं भी भरूँगा हिय में
तेरे प्रतीक्षा क्षण
जागूँगा रात सारी
जागे हैं जैसे उडुगण ।

बेला प्रभात की जब
आयेगी चमचमाती
मिटजायगा तिमिर सब
गूँजेंगे स्वर प्रभाती ।

वीणा के तार स्वर्णिम
झन्कार जब भरेंगे
भत खण्ड-खण्ड होकर
स्वर-सिन्धु बह चलेंगे ।

मेरे हृदय के खग का भी नीड़ स्वर भरेगा,
तन-कुंज-बेल-वन में, तू फूल बन खिलेगा ।

★ ★ ★

४६- विश्व यात्रा

प्राणों के यान पर चढ़

गृह-शून्यता से बाहर,

क्या जा सकूँगा मैं भी

संसार के भ्रमण पर ?

हो विश्व कार्य में रत

जब से हुआ निरत मैं ।

बहु-द्वार-मध्य आकर,

पथ से हुआ विरत मैं ।

आकांक्षाएं, आशा,

सुख-दुख-निहित जलधि की ।

लहरों को वक्ष पर सह

गणना न की अवधि की ।

पर फिर प्रक्षुब्ध झंझा

से त्रस्त, हत-चरित हो ।

तेरी शरण में आया,

सौ बार जर्जरित हो ।

जग-हाट के निविड़ में

तेरा ही स्वर मिला है ।

तू ही रहा है सम्बल,

तेरा ही बल मिला है ।

फिर सोचता हूँ मैं यह

क्या जा सकूँगा घर से ?

प्राणों के यान पर चढ़

संसार के भ्रमण पर ।

* * *

४८- पुष्प की प्रार्थना

पुष्प डाली पर खिला जो
धूल में मिलने न पाए ।
तोड़ ले प्रभु जल्द मुझको
मलिन जीवन हो न जाए ।

पिर सकूँगा हार में हिय के
अकारण, कौन माने ।
लग सकूँगा वक्ष से तेरे, अरे !
यह कौन जाने ।

तू चरण ही से मुझे स्पर्श कर दे
पृष्ठ मेरे भाग्य के, करुणा से भर दे
तोड़ ले इस पुष्प को अब देर मत कर
दिवस बीता, आ रहा है तिमिर गह्वर

पहर तेरी अर्चना का टल न जाए
पुष्प का अवशेष यौवन गल न जाए
है बची जो गंध, गरिमा और रोली
पूर्व सेवा के कहीं वह धुल न जाए

शेष कुछ पल हैं, मुझे अब तोड़ ले प्रभु ।
मैं मलिन होने न पाऊँ, तोड़ ले प्रभु ।
धूल में मिलने न पाऊँ, तोड़ ले प्रभु ।
तोड़ ले प्रभु, तोड़ ले प्रभु, तोड़ ले प्रभु ।

★ ★ ★

४६- पुकार

मम-अन्तर है अविरल ये ही शब्द कह रहा -
चाह मुझे तेरी है, केवल एक तुम्हारी ।
इतर वासनाएं जो मन को घेरे रहतीं
निशा-दिवस जो मुझमें प्रतिपल फेरे करतीं ।
अनचाही, निःसार निपट मिथ्या हैं सारी,
चाह मुझे तेरी है, केवल एक तुम्हारी ।

राका के अन्तस्तल में ज्यों निहित व्योम है
और तिमिर-सित व्योम बीच ज्यों द्युतित सोम है ।
वैसे ही अपने कल्मष संग याद तुम्हारी
चाह मुझे तेरी है, केवल एक तुम्हारी ।

शांति प्राप्ति हित, शांति भंग ज्यों बादल करता
और द्रोह से चरम लक्ष्य को अर्जित करता ।
वैसे मेरा द्रोह प्रेम पाने के हित ही
तेरी करुणा को जब-तब आघातित करता ।
अविरल गति से लगा रहा है टेर तुम्हारी,
चाह मुझे तेरी है, केवल एक तुम्हारी ।

५०- निष्ठुर स्वर

और और कर और
अभी आघात तार पर
जीवन वीणा अभी और दंशन सह सकती ।
खींच-खींच तू और खींच ।
कुछ ऊँची गति से
अभी तार की डोर बहुत से स्वर भर सकती ।

जिस स्वर से तूने जीवन आरोह भरा है,
उन्हीं स्वरों में जीवन का अवरोह शेष है ।
हे वादक तेरे कर से झंकृत होने को
एक एक स्वर, मम जीवन का निर्निमेष है ।

कोमल करुणा से मेरा अनुराग नहीं है
केवल राग रागिनि मुझको नहीं चाहिए ।
मृदुल स्वरों को खेल खेल कर नष्ट हुआ मैं,
तन्वंगी कोमलता मुझको नहीं चाहिए ।
बहा-बहा तू अग्नि-प्रज्ज्वलित
प्रचण्ड गति से,
प्रखर पवन को प्रबल वेग से तू बहने दे ।
उठा-उठा तू अग्नि शिराओं को अम्बर तक
व्योम वलय के सभी क्षितिज चंचल होने दे
निष्ठुर से निष्ठुर स्वर कस कर, मेरी जीवन वीण सजा तू ।
आमन्त्रित तेरी आघातें, निष्ठुर ! अन्तिम राग बजा तू ।

★ ★ ★

५१- दिव्यरस

पात्र जीवन का सुधा से है भरा
गात से अमृत निरन्तर झर रहा
कौन-सा वह दिव्य रस है ? देवता !
साध जिसके पान की तू कर रहा

विश्व जो तूने रचा अपने करों
विश्व-प्रतिमा को दिया सौन्दर्य जो
क्या उसे ही देखना तू चाहता ?
निज दृगों से और मेरे लोचनों !

दिव्य स्वरमय गीत जो तूने रचे
अखिल जग, अग, अभ्र में जो गूँजते
क्या उसे ही श्रवण करना चाहता ?
कर्ण से अपने व मेरे कुहर से ।

देव ! तेरी सृष्टि से पा प्रेरणा
मम हृदय नित गीत सुन्दर रच रहा ।
नित्य तेरे स्नेह के आनन्द में
शब्द मणि के जाल अगणित बुन रहा ।

प्रेमवश मुझ पर लुटा सर्वस्व तू
निहित हो जाता हृदय के मौर में ।
देखना क्या चाहता माधुर्य को
मेरे अन्तर्गति के प्रति पौर में ?

कौन है वह दिव्य रस ? हे देवता ?
तू जिसे है पान करना चाहता ?

★ ★ ★

५२- अषाढ़ के मेघ

नभ में फिर अषाढ़ के बादल लगे डोलने
भीनी-भीनी-गंध, पवन फिर लगी घोलने
रोमाञ्चित हो गया जीर्ण ह्रद, नव-जलधर से
हिय-वीणा झन्कार उठी अषाढ़-घन-कर से
नभ में फिर अषाढ़ के बादल लगे डोलने ।

दूर-दूर तक हरे खेत पर बादल छाया
प्रति बाली पर बिखर रही है श्यामल माया
प्रिय ! तुम आए, प्रिय तुम आए
मनुवा बोला
तेरा ही आभास मिला, जब
अन्तर खोला ।
गूँज, यही धुन-एक
गगन में लगी घोलने,
नभ में फिर अषाढ़
के बादल लगे डोलने ।

★ ★ ★

५३- मम हृदय की छाप

देख पाया विश्व में जो अब तलक
एक भी उपमा नहीं उसकी मिली
मैं विदा के दिवस बस ये ही कहूँ
सम-सरूपा पा न पाया एक भी
दिव्य-दीपित-जग-सरोवर-कमल का
मधुर-मधु मैंने पिया है मुक्त मन ।
धन्य होता मैं रहा प्रतिबार ही
धन्यता ही बन गयी अनमोल धन ।
खेल खेले बहुत जग के मञ्च पर
अमित-सुन्दर रूप लोचन में भरा ।
मधु भरा सौन्दर्य हिय में धार कर
मम हृदय आनन्द से इतरा रहा
छू जिसे पाना असम्भव सर्वदा
वह समाया गात के प्रति पोर में
धन्य जीवन हो गया आनन्द से
प्राण पुलकित हो उठे हिय-नीर में
इसलिए मैं विदा के दिन यह कहूँ
देख पाया अब तलक जो विश्व में
एक भी उपमा नहीं उनकी मिली
थे सभी उपमान निज उपमेय में ।

* * *

५४- प्रति छाया

प्रियतम !
तुझसे मिलने बाहर चली अकेली
जाने कौन !
अँधेरे पथ में साथ हो लिया ।
दुर्गम-पथ चल, भूल-भूलइयाँ उसे बहुत दीं
किन्तु पलट कर जब भी देखा वही साथ था ।

प्रायः मुझमें यह भ्रम जागा, नहीं साथ वह
किन्तु फिर वही पग ध्वनि मुझको पड़ी सुनाई

धूल उड़ाता पृथ्वी पर वह
अद्‌भुत चंचलता दिखलाता ।
अरे कौन वह जो स्वर से स्वर नित्य मिलाता

प्रभु ! क्या मेरी प्रतिछाया ही धृष्ट हो गई ?
जो भी हो, निर्लज्ज-चरम-पद वाला वह है ।
द्वार तुम्हारे आते मुझको लाज आ रही ।

प्रियतम् !
तुझसे मिलने बाहर चली अकेली
जाने कौन !
अँधेरे पथ में साथ हो लिया ।

★ ★ ★

५५- अब उठाऊँगा नहीं मैं भार अपना

अब उठाऊँगा नहीं मैं भार अपना

प्रभु ! स्वयं को मैं न कंधा दे सकूँगा,

भीख मांगूँ द्वार पर अपने, विवश-सा

यातना इतनी विकट नहिं सह सकूँगा ।

हैं किए जो पाप धारण गात पर, प्रभु !

वस्त्र-सा तेरे चरण पर भेंट दूँगा ।

और फिर निर्द्वन्द्व चिन्तारहित होकर

पीठिका देखे बिना विचरण करूँगा ।

वात मेरी वासना का जिधर जाता

क्षीण होती दीप्ति दीपक की उधर ही

इन मलिन कर का न कर स्वीकार अर्चन

है इन्हें शोभित डुलायें नित चँवर ही

पातकी मैं हूँ, मेरा पातक मिटा कर

वासनाओं की मलिनता तू मिटा दे ।

प्रेम-प्रेरित पत्र-पुष्पं जो भी लाया

कर मुझे पावन, उसे स्वीकार करले ।

★ ★

५६ - संचित धन

बोल रे कवि !
कौन-सी तू भेंट देगा ?
सान्ध्य में जब मृत्यु तेरे द्वार होगी !
रत्न से भरपूर
जीवन-सिन्धु मेरा
मृत्यु को मैं रत्न समुचित भेंट दूँगा ।

दूत आवें मृत्यु के, घर,
कौन वर इससे मनोहर ?
दिव्य स्वागत मैं करूँगा
रिक्त-कर जाने न दूँगा ।

प्रात-संध्या-निशि-दिवस अरु शिशिर-रस के मधुकलश
कुसुम, पल्लव, कंज, द्रुम मधुमास के संचित सुयश
संग्रहित अन्तर में मेरे
और सज्जित अति घनेरे

दूत आवें मृत्यु के, घर
कोष दूँगा सामने धर
लूट लें जो मन में आये
ले चलें मुझको उठाए । मैं समर्पित हूँ ।

★ ★ ★

५७- सीमा मे असीम

हे असीम ! सीमित सीमा में तुझको पाया,
मेरे अतः करण बीच धुत तेरी माया ।

हे निराकार !
साकार तुम्हारा इतना उभरा
स्वर-गीत-छन्द मकरन्द-गन्ध-सम
हिय में उतरा ।
-शोभित है मेरा हिय अन्तर इन अवयव से ।
पृथ्वी कम्पित थर-थर होगी
सप्त सिंधु जब ज्वार भरेंगे
मेरे तेरे संगम के क्षण
पापों के अवरोध बहेंगे ।
तेरा तेज बिछा बिन छाया, आलोकित तुझसे प्रतिकाया
किन्तु प्रकट तू हुआ जब कभी, तूने मुझको भव्य बनाया ।
मेरे अश्रु, आपकी करुणा
सुन्दर तू, पा करुणा-वरुणा ।
हिय-अन्तर मेरा शोभित है, तेरे वर से
शोभित है मेरा हिय-अन्तर इन अवयव से ।

★ ★ ★

५८- ओ मरण मम !

ओ मरण मम !
साथ जीवन की चरम्गत, चक्षुगत आ !
ओ वरद-सम !
बात मुझसे कर मुखरवत् रक्षवत् आ ।

मै प्रतीक्षारत तुम्हारी, सकल जीवन-रात जागा,
इक तुम्हारे मिलन के हित, दुःख सुख का राग पागा ।
ओ मरण मम ! सामने आ ।
प्रेम मेरा, आश मेरी
और मम संचित तिजोरी
व्यक्ति-निज को साथ लेकर
बढ़ रही है ओर तेरी
ओ मरण मम !
दृष्टि अपनी फेर तो इक
मै तुझे सम्पूर्ण अवयव से समर्पित ।

पुष्प जो संचित थे होने हो चुके हैं
हार जो गुंफित थे होने हो चुके हैं
ओ मरण मम !
तू पिया सम द्वार पर आ,
मै वधू सम, छोड़ बाबुल घर चलूँगा ।
सामने आ, सामने आ ।।

☆ ☆ ☆

५६- अन्तिम प्रसाद

जन्म भर अन्तःकरण अरु जगत में
गीत गा-गा-कर मुझे खोजा किया ।
दिश-दिशांतर एक भी बाकी नहीं
जिस जगह तेरा नहीं वाला दिया ।
तेरे संदेशों से नण्डित गीत में
संवरण कर, यान-सम उड़ता फिरा,
अनवरण कर गुप्त तेरे सब रहस्य
विश्व के प्रति पात्र को देता रहा ।
मैं अपरिचित था मगर परिचित हुआ
हृदय के नभ में चमकते नखत से,
थे मुझी में किन्तु मैं अनभिज्ञ था
निज हृदय में वास करते वरद से ।
शुभ हमारे गीत, कर आए भ्रमण
दुःख-सुख के देश अरु परदेश सब,
साँझ की बेला में नत तुझ पर हुए
दे उन्हें अपने करों परिवेष अब ।

* * *

६०- अन्तिम रागिनी

व्यक्त गीत मेरा जो अन्तिम
पूर्ण उसी से सब रागिनियाँ ।
मेरा हृदय कौन थप नाचा
बतलातीं उसकी पैंजनियाँ ।

जिस सुख से धरती वृक्षों की
डालों की बइयाँ ले झूमी,
और मरण-जीवन की जोड़ी
जिस सुख से जग-रथ पर घूमी,

वैसा सुख ही व्यक्त कर रही,
मेरी अन्तिम रचित रागिनी ।

जो सुख पावस घन से गिरकर
अलसायों को विद्युत देता,
जो सुख झंझाओं से झर कर
मलिन हृदय को सरसिज करता

जो सुख रक्तिम-कमल-पत्र पर
अश्रु-बूँद सम शान्त विराजे,
जो सुख निज अस्तित्व मिटाकर
शब्दहीन निर्लेप विराजे,

वैसा ही सुख व्यक्त कर रही
मेरी अन्तिम रचित रागिनी ।

★ ★ ★

६१- अल्प निवेदन

तुझसे, प्रभु ! ये भीख निवेदन —

शेष रहे यदि अहंकार तो केवल इतना

पूर्ण रूप से एक-रूप तुझसे हो पाऊँ,

मुझमें बस इतना रहने दे स्वतन्त्र चेतन

तेरी सत्ता का अनुभव चहुँदिश कर पाऊँ ।

प्रति-पल, दिन-निशि-पहर और क्षण

अपना प्रेम तुझे हो अर्पण ।

मेरे अहम् गात के ऊपर

केवल इतना रहे आवरण

तेरी लीला धारे अविरल

किन्तु नहीं कर सके संवरण

बन्धन में मैं बँधूं

किन्तु हो तेरा बन्धन

सिद्ध प्रयोजन तेरा हो,

प्रभु ! मेरे जीवन ।

बस तुझसे ये भीख निवेदन

★ ★ ★

६२- भिक्षा की प्राप्ति

दे दिया प्राण-झोली में तू ने जो कुछ
भय रहा नहीं अत्यय का उससे कुछ
कितने रात दिनों के सुख-दुख
हृदयाकाश में उड़ते खग-स्वर
रूप-वेश के कितने रूपक -
देकर मेरा लिया हृदय हर ।

ज्ञात - ?
नहीं तू आत्मसात मुझमें हो पाया
विदित - ?
पूर्णता मुझे इसी से मिल न पाई
फिर भी - !
जो कुछ मिला मुझे है, बहुत मिला है
मैंने तो -
हैं भाग्योदय की किरणें पाईं
तूने निज स्पर्श दिया है
'तू है' - यह अनुभूति मिल गई
तेरी श्रद्धामय तरणी पर
जीवन-यात्रा पूर्ण हो रही
दे दिया प्राण-झोली में तूने जो कुछ
भय रहा नहीं अत्यय का उससे कुछ ।

★ ★ ★

६३- राजसी भेष

राजाओं के वस्त्र, कनक-मुक्ता की माला
पहिना कर शिशुओं की क्रीड़ा सीमित कर दी
बोझ लाद, संकोच भर दिया उनके मन में
भेद-भाव की सीमा-रेखा दीपित कर दी

दे आभूषण, मानव-भूषण छीन लिए क्यों ?
मिट्टी को मिट्टी से तुमने प्रथक किया क्यों ?
धूल-धूसरित जन-समूह के गलियारे से
सत्ता धारी ! अपने शिशु को हटा लिया क्यों ?

मोह भर दिया बालक तक में ।
भेद-भाव की दृष्टि उसे दी !
हीरे मोती की सांकल से ---
शिशु-विकास को सीमा दे दी !!

माता ! अपने बालक को मत बहुत सजाओ
परिधानों में बँध कर खेल नहीं पाते वे ।
मिट्टी कीचड़ और धूप-वर्षा की झंझा
निज छाती पर धर कर झेल नहीं पाते वे ।
सांकल को दे तोड़, बाँध मत कोई सीमा
मिलने दे शिशुओं को शिशुओं से बाहें भर
चार दिशाओं से जो शुभ संगीत छिड़ा है
गाने दे जन-गीत उन्हें निज वाणी में भर ।

* * *

६४- तन का कारावास

जिन शब्दों से बोध हुआ करता है मेरा

उस बन्दी गृह में तुझको बन्दी कर रक्खा

सभी पहर अपनी ही चिन्ता में मैं डूबा

अन्य सभी का कार्य भूल, ताखों पर रक्खा

'मैं ही मैं हूँ' जैसे यह प्राचीर उठ रही नभ को छूने

विदित मुझे है - वैसे-वैसे तिमिर बढ़ रहा मन पर दूने

मिट्टी ऊँची होती जाती

नाम हमारा बढ़ता जाता

छिद्र मूंदता फिरता इत-उत

अंधकार में गड़ता जाता ।

जागी चिन्ता मुझको इसकी

कैसी यह दीवार खड़ी की

घेर रही जो सत्-स्वरूप ही ।

★ ★ ★

६५- सीप का मोती

'मैं तुम्हारी दया का याचक रहा'
यदि रहूँ अंजान मैं इस तथ्य से ।
तुम भुलाना मुझे, प्रभु ! फिर भी नहीं
संवरण करना, दया के पात्र से ।
मैं सृजन-पल में तुझे नित भूलता
निज खिलाई वाटिका में झूलता ।
इस क्रिया के सुख से जो झरता पराग
मैं उसी की गंध में सब भूलता ।
गात की मिट्टी की क्रीड़ा देखकर
तुम विमुख होना नहीं मुझसे कभी '
तुच्छ मुझको मत समझना भूल कर
प्रेरणा अपनी मुझे देना सभी ।
द्वंद्व के है बीच पलता सत्य यूँ
सीपियों के बीच ज्यों मुक्ता पले
हे प्रभू ! तेरे सिवा अब कौन है
सत्य का जो भेद प्रस्फुट कर सके !
मृत्यु के मर्दन से बनती है सुधा
तू मिटा मम दैन्यता का तम-सहन्
पतन का भय ही जगाता चेतना
द्वन्द्व के पल, सुन रहा तेरे वचन ।
रहा कोलाहल जगत में अनवरत
किन्तु तेरे शब्द भी स्पष्ट थे ।
कर सका गम्भीर वाणी ग्रहण मैं
कर्ण मेरे शब्द-भूखे पुष्ट थे ।

* * *

६६- एक ही नमस्कार

हे प्रभो ! वर दे मुझे ऐसा विलक्षण

एक अर्पण में चरण स्पर्श कर लूँ

क्षुद्र काया दिव्य चरणों में समर्पित

मात्र इक ही साँस में निष्काम धर दूँ

अनझरे घन-सावनी झुकते रहे ज्यों

हृदय मेरा नमित हो तेरे भवन पर

मात्र इक ही साँस में होऊँ समर्पित

हे प्रभो । मुझको मिले बस मात्र यह वर ।

जो हमारे गीत में बहती तरलता

मिले उसको ढाल, केवल ओर तेरी

एक ही बन धार बहने लगें सब स्वर

विलय हों तुझमें, झुकूँ जब ओर तेरी ।

मानसर की ओर जाते हंस, के दल

एक गति से रात दिन उड़ते हुए ज्यों

प्राण मेरा भी उड़े, शिव मार्ग के पथ

तीव्र गति से, बिना भटके, ठीक वैसे ।

★ ★ ★

६७- निराला प्रेम

बाँधा सबने प्रेम-पाश में
जिसने प्यार किया जगती पर,
रीति जगत की यही सनातन
यही रीति जीवित धरती पर ।
किन्तु तुम्हारा विकट प्रेम प्रिय
बहुत निराला ढंग पकड़ता,
मुक्त पाश से मुझको रखता
प्रेम-पाश में नहीं जकड़ता ।

मेरे आगे पीछे रहते
संसारी प्रेमी जन प्रतिक्षण
भूल न जाऊँ कहीं उन्हें मैं
यह शंका भय देती, हरक्षण ।

पल, दिन, मास, वर्ष बीते प्रिय
किन्तु तुम्हारे हुए न दर्शन
कैसा अजब निराला ढँग यह !
कैसा अजब निराला दर्शन !
मौन रहूँ या तुम्हें पुकारूँ
इससे क्या पड़ता है अन्तर
प्रेम तुम्हारा सदा प्रतीक्षित
रहता मेरे प्रेम-मार्ग पर ।

★ ★ ★

६८- मोह-श्रृंखला

मोह की है श्रृंखला अति दृढ़, प्रभू !
कामना मेरी उसे तू तोड़ दे,
किन्तु फिर इस मन से बोलो, क्या कहूँ ?
दुःख होता है उसे इस तोड़ से ।

मुक्ति की भिक्षा सदा हूँ मांगता
मिल न जाए, किन्तु भय भी जागता
साथ जिस अभिशाप के रहता रहा
मोह मुझको हो गया, उस शाप से ।

जानता हूँ श्रेष्ठ तू ही एक है
दूसरा कोई नहीं अनमोल धन ।
किन्तु मुझको मोह खण्डित पात्र से
घर से उनको फेंकने का मन नहीं ।

संवरण मेरे हृदय अरु गात का —
कर रहा जो, वह मलिन अरु जीर्ण है
ग्रसित है वह मृत्यु के अभिशाप से
किन्तु फिर भी मुझे ममता उसी की ।

मैं ऋणों से नित्य लदता ही रहा
अनगिनत जन ने किया उपकृत मुझे ।
विफलता की श्रृंखला मिलती रही
लाज में जीवन-सकल पलता रहा ।

किन्तु फिर भी जब तुम्हारे सामने
याचना कल्याण की करने बढ़ा
भय अनोखा जागृत तन में हुआ
गात डर से काँपने थर-थर लगा ।

तू कहीं काया न मुझसे छीन ले
मलिन मेरे वस्त्र मुझसे ले-न-ले
'श्रृंखला-बन्धन' से मुझको मुक्त कर
मुक्ति का वरदान मुझको दे न दे ।

* * *

६६- विराम कहाँ ?

मन में सोचा था —
न आऊँगा कभी
शेष कर दूँगा यहाँ की श्रृंखला ।
किन्तु फिर आना पड़ा
इस सभा में —
नित्य बढ़ती ही गयी यह मेखला ।

हृदय उत्सुक हो गया नवगीत को
फिर नये रागों में गाने के लिए
रूप मेरा अन्त में होता है क्या
कौन है इसको बताने के लिए ?
सांध्य की बेला में जब
किरणों के साथ,
तान अपने गीत की मैं पूरता,
अर्ध-राका के प्रहर
गम्भीर स्वर
पुनः जीवन में हमारे जागता ।
नींद तिल भर फिर न रहती आँख में
बेलि गीतों की नहीं पाती विराम ।

★ ★ ★

७०- थकी पलके

म्लान-मिश्रित इस निशा में
निज चरण में ले सभी व्रण

दे मुझे आश्वस्त वाणी
जोड़ दे निश्चिन्तता-क्षण

शिथिल मेरी शक्तियाँ हैं
क्लान्त काया पास मेरे ।
अर्घ्य इनको मत बनाना,
मलिन मन नहिं योग्य तेरे ।

तू दिवा की थकी पलकें
निशा-पट से ढाँकता है ।

इसलिये कि नए दिव से
नित नया सुख चाहता है ।

नित नयी दे ज्योति दिव को
प्रेरणा अवदान करता
एक तेरी ही कृपा से
दिव नया उत्साह भरता ।

७१- अंतराल

खुला जिस दिन कमल-सम्पुट
सुमन-वारिज मत्त झूमा
मै अजाना रहा उससे
व्यर्थ ही उन्मत्त घूमा ।
अरे ! मेरा मन कहाँ था
मै कहाँ पर ताकता था ।
कूल पर पंकज खिले थे,
क्षितिज पर मैं झाँकता था ।
इक विलक्षण- सा हृदय में
खेद प्रायः व्यापता था ।
पवन जब दक्षिण से आता -
था, तो सौरभ जागता था ।
पूर्ण-तन सौरभ-पवन पा
इस तरह से ललित होता ।
जिस तरह से मिलन के
मधुमास में हृद वरित होता ।
था अरे कितना निकट वह
निकट क्या ! मुझमें निहित था,
कमल का सम्पुट खिला जो
था, वह अपना ही हृदय था ।
तब न इसको जान पाया
थी मुझी में वह मधुरिमा ।
सुमन-वारिज जो खिला था,
निज हृदय की रही गरिमा ।

* * *

७२- प्रस्थान

अब मुझे निज नाव का लंगर उठाना ही पड़ेगा
बहुत दिन इस घाट बैठा, किन्तु अब जाना पड़ेगा
हाय तट पर ही खड़े दिव-पहर बीते जा रहे हैं
साथ कुछ भी ले न पाया, हाथ रीते जा रहे हैं ।

पट खुले मधुमास ऋतु के
मुझे दर्शन हो न पाए
मैं मुरझते फूल ही से
रह गया डाली सजाए ।

लोल लहरें रह गयीं सागर-परिधि में ही मचल कर
कुंज गलियों में गिरे तरु-पत्र हर-हर पीत होकर

कवि ! कहाँ पर दीठ गाड़ी ?

मिल रहा उल्लास है जो पवन के अवयव में मिश्रित
कवि अहे ! अनुभूति से उस, क्या अभी भी तू अपरिचित !
ध्यान से सुन,

पार कोई गा रहा है

पवन का प्रत्येक झोंका

इक सँदेशा ला रहा है

अब मुझे निज नाव का लंगर उठाना ही पड़ेगा
बहुत दिन इस घाट बैठा, किन्तु अब जाना पड़ेगा ।

★

७२ - दिवसान्त

दिवस का अवसान है यदि
लुप्त हैं यदि गीत खग के
हहर-हर-हर ध्वनित मारुत
सो गया यदि हो अलस के ।

तो मुझे भी तू उढ़ा दे
काजलों से सने घन-पट ।

काजलों से सने घन-पट
तू उढ़ा दे —

ठीक वैसे
अवनि को ज्यों नींद की चादर उढ़ाई
ठीक वैसे
सांध्य को ज्यों कमल सम्पुट दे दिखाई ।

जिस पथिक का शेष
पथ-साधन हुआ है,
दुःख से जिसका
मलिन आनन हुआ है ।
धूल से लथ जीर्ण
जिसके वस्त्र सारे
शक्ति से जो हीन
कुण्ठित मन सँवारे

उस पथिक को तू उढ़ा दे
काजलों से सने घन-पट ।

★ ★ ★

७४- करुण गीत

मलिन तन-मन है अगर तेरा, सखे !
और पलकें नींद से हैं झप रहीं ।
मार्ग यदि तुझको नहीं स्पष्ट है
और शंकाएं विवर्तित हो रहीं ।
तो नहीं तूने सुनी क्या यह कथा ?
कण्टकों पर फूल करता राज है ।
शूल से भयभीत तू क्यों हो सखे
यदि हृदय तेरा सुकोमल आज है ।
जाग रे मानव निशा की नींद से
व्यर्थ में अपना समय जाने न दे ।
और पथरीली गली के मोड़ पर
मीत जो बैठा उसे धोखा न दे ।
नभ अगर मध्याह्न की गर्मी से श्लथ
और तृष्णा-सिक्त रज तपती है अज
तू उपेक्षित कर, सबल इस रोध को
धार अपने मार्ग को, बन मत्त गज

अहे मानव !
शेष अन्तर में नहीं क्या, अब कोई उल्लास ।
कर जरा आघात हिय पर
कौन है स्वर नहीं जिसमें सरगमी आवास ?
गीत फूटेंगे करुण निर्बाध हो
तू जगा तो निज हृदय में साध को ।

★ ★ ★

७५- स्वतः बन्दी

"बन्दी !

बता वह कौन था, जिसने तुझे बन्दी किया ?"

"बन्दी किया प्रभु ने मुझे" -

बन्दी ने यह उत्तर दिया ।

"थी कल्पना मैंने करी ——

धन बल जगत का छीन कर

अपनी तिजोरी भरूँगा,

सब रजत कंचन बीन कर ।

ऐसी जगत-माया जगी

प्रभु-भाग भी मैंने लिया,

पर नींद मुझको आ गई

प्रभु के शयन में सो गया ।

टुक आँख जब मेरी खुली

देखा तिमिर, निर्द्वन्द्व था -

मेरे परिध में घूमता,

मैं लौह-पट में बन्द था ।"

"बन्दी बता

वह कौन ? जिसने शृंखला बाँधी अलस ।"

"मैंने गढ़ी जन्जीर यह

मैं ही हुआ उससे अवश ।

थी कल्पना मैंने करी

जन्जीर से जग बाँध कर

उन्मुक्त घूमूँगा जगत,

अपनी ध्वजा को गाड़ कर ।

भणि से लहकते लौह पर चोटें हथौड़ों की पड़ीं
दिन-रात मैंने एक कर जन्जीर की कड़ियाँ जड़ीं
पर जब अखण्डित बन गयी
तब लिपट मेरे पैर से
ऐसी बँधी जन्जीर वह
जैसे बँधी हो गैर से ।

★ ★ ★

७६- रहस्यमय

यह वही है, पैठ अन्तर-आत्मा

मर्म की जो गूढ़ता कहता रहा,

यह वही है जो दृगों में मंत्र भर

वीण-हिय पर दुःख-सुख गाता रहा।

यह वही है जो सुनहरे स्वप्न बुन

निज चरण इह लोक में धरता रहा

यह वही है मात्र जिसके योग से,

आत्म-विस्मृत हो के मैं गाता रहा।

रात दिन अरु युग रहे हैं बीतते

पर वही वह है जो मुझको नित नए

नाम से अरु गात से संवरित कर

दुःख-सुख-सागर में नहलाता रहा।

★ ★ ★

७७- समाधान

बादल क्यों रंग-बिरंगे हैं ?
फूलों के दल क्यों शतरंगे ?
बूँदों में क्यों है इन्द्र धनुष ?
धरती के पट क्यों बहुरंगे ?

बच्चों ! तुमसे पाया उत्तर
रंगीन खिलौनों को देकर ।

क्यों तरु-पत्रों में गीत भरा ?
सागर में क्यों संगीत भरा ?
किसका सुनती है गीत धरा ?
क्यों अग-जग सारा नाच रहा ?

बच्चों ! तुमसे पाया उत्तर
लोरी के गीतों को गाकर ।

फूलों में क्यों है अमृत - रस ?
फल में ढाला क्यों मीठा रस ?
क्यों कुञ्ज कुञ्ज में कलश खोल
यह प्रकृति बाँटती है मधुरस !

बच्चों ! तुमसे पाया उत्तर
माखन-मिश्री दे हाथों पर ।

छूती प्रभात की सूर्य किरण
क्यों धरती को, नभ से आकर ?
सिहरन करती है क्यों बयार
मधु ऋतु की, तन छू बार बार ?

बच्चों ! तुमसे पाया उत्तर
सुन्दर मुख का चुम्बन पाकर ।

★ ★ ★

७८- गरिमा

गगन भी तू और उसका सुभग भी

नीड़ भी तू और उसका विहग भी

रूप प्रति है ।

प्रीत तेरी वह अमित ।

पुंज तेरा —

नीड़ में मेरे निहित ।

गंध अरु स्पर्श से आवृत्त मन

सिक्त तेरी आत्मा से रूप-तन

मौन ऊषा पुष्प-माला

पश्चमी सागर से नितभर

कर-कमल से नित्य प्रातः अवनि का अभिषेक करती

और संध्या स्वर्ण-गगरी

स्वर्ण डाली में सजाकर

शान्ति शीतल सुधा नीरव घाटियों को दान करती

किन्तु नभ फैला जहाँ

नित आत्मा के सञ्चरण को

ज्योत्सना फैली वहाँ

निष्पङ्क, श्वेत, अटूट-प्रण को

लोक इतना शान्त वह, कि शब्द की छाया गयी ना

रात दिन का क्रम न चलता वर्ण की रेखा खिची ना ।

★ ★ ★

७६- जीवन-धारा

रात दिन निज धमनियों में जो निहित है
धार जीवन की; वही गतिमान जग में
तान, सुर, लय एक-सा सब में तिरोहित ।

धरा की जो धूल में विकसित हुए तृण
और नव-पल्लव, सुमन बन झूमते है
एक जीवन-धार ही सब में प्रवाहित ।

झूलती जो जलधि-लहरों के हिंडोलों में निरन्तर
जनन के आरोह से अवरोह पल तक
वही जीवन-धार है सब में पिरोहित ।

मात्र जीवन-धार के स्पर्श से ही
तन बदन रोमाञ्च से संयुक्त होता,
अरु युगों में छिपे नर्तन-कम्पनों से
रक्त मेरी धमनियों का मुक्त होता ।
बोध जब होता, मुझे अभिमान होता,
बोध जब होता, मुझे अभिमान होता ।

८०- अनोखा उपहार

तेरे ये उपहार अनोखे

पूर्ण रूप से प्राप्त मुझे हो

फिर भी तेरे हो जाते हैं ।

सरिता की जलधार

खेत का सिंचन करती

किन्तु लौटकर फिर

तेरे चरणों में जाती ।

कुसुम पवन को सदा

सुवासित करते, लेकिन

चरम लक्ष्य है उनका

तुझ पर अर्पित होना ।

जग तेरी पूजा करने —

से दीन न होता

तेरी भिक्षा से भिक्षुक

कंगाल न बनता ।

कवि-वाणी में, जन —

निज मन के सपने पाता

पर कवि तो केवल

तेरा संकेत बताता ।

★ ★ ★

८१- उपवन

व्यर्थ बीते समय की चिन्ता जगी
जब कभी भी मिल सका अवकाश-क्षण
किन्तु क्षण मेरे हुए कब नष्ट ही
हाथ में तेरे रहा प्रत्येक क्षण ।

तू निहित हो सृष्टि के प्रति अंश में
कर रहा विकसित तृणों को शैल को
अभय तुझसे ही मिला प्रति पात्र को
बीज को, फल को, विटप को, फूल को ।

अन्त होगा ही नहीं निज कार्य का
सोच कर यह, मैं शिथिल नैराश्य मन,
निज शयन सोने गया, ले खिन्नता
थी उदासी पास, ज्यों वैराग्य तन ।

किन्तु प्रातः दृष्टि जब मेरी खुली
था खिला उपवन हमारे गात का,
खिल गयी थी हर कली अन्तर्निहित
मैं चकित था, प्रात का वरदान पा ।

* * *

९२- मृत्यु वन्दन

द्वार आई मृत्यु, ले तेरा सँदेशा
सिन्धु अन्जाने न जाने पार कितने --
कर, अँधेरी रात में ड्योढ़ी पै आई ।
हृदय मेरा आज थर-थर लगा कँपने ।

किन्तु फिर भी ज्योति का धर दीप कर में
खोल दूँगा हृदय के पट, शीश नत कर --
दूत का तेरे अभय स्वागत करूँगा --
बढ़कर कर; अश्रु चख भर, प्रेम से वर ।

मुक्तमन अपने हृदय का कोष दूँगा
शेष कुछ अन्तर्निहित रहने न दूँगा
लौट तेरी जायगी सौगात तुझको
कर चुकेगी कार्य निज, कर शेष मुझको
शून्य कुटिया में अकेला 'अहं' होगा
अन्त में बस भेटने को वह बचेगा ।

* * *

८४- निस्सीम समय

प्रभु तेरे हाथों में तो निस्सीम समय है
है क्या कोई जो इसकी गणना कर पाए ।
अनगिनती दिन, रात, पहर, युग बीते जाते
वृन्तों पर जैसे कलिका खिल, फिर झर जाए ।
तुझको क्या चिन्ता है इसकी
तुझको इसकी क्या अधीरता
केवल एक सुमन को विकसन-क्रम युगों का, तू दे सकता ।
मेरे पास व्यार्थ खोने को एक नहीं पल
इसीलिये मैं अस्तव्यस्त हो जाता अक्सर
क्षण-क्षण की भी देर मुझे दूभर होती है
युग की बातें करने का मुझको क्या अवसर !
मुझसे मेरा समय छीनते ये संसारी
जो ऋण देकर मुझसे ब्याज माँगने आते,
तेरी पूजा में वे नित बाधक बनते हैं
जो अपनापन मुझसे प्रायःअधिक जताते ।
ममजीवन दिवसांत-पहर में
भय विलम्ब का मुझे सताता,
दर्शन से वंचित होने का,
भय प्रभु ! मुझको बहुत डराता ।
पट मंदिर के बन्द मिले ना, इस भय से जब कातर, होता
मैं विस्मय से रह-रह जाता, खुलाद्वार जब फिर-फिर पाता ।

★ ★ ★

८५- अवशेष की चिन्ता

जानता हूँ वह समय भी दृष्ट होगा
जब जगत के मंच पर पर्दा गिरेगा
पूर्णता को प्राप्त जीवन नाट्य होगा
पींजड़े को तोड़कर यह खग उड़ेगा ।
रात के तारे चमकते ही रहेंगे
प्रात में नित सूर्य उगता ही रहेगा
और सागर की तरंगों-सम समय में
दुःख-सुख का ज्वार नित उठता रहेगा ।
अंत की जब कल्पना करता हूँ, सत्वर
याम की प्राचीर तब है टूट जाती
मृत्यु के आलोक में मैं देखता हूँ
नित नयी तस्वीर मेरी दृष्टि पाती ।
निम्न से भी निम्न पथ में रूप देखा
अल्प से भी अल्प प्राणी में चतुरता
हर तरफ देखा विपुल व्यापार अद्भुत
हर तरफ व्यापी तुम्हारी ही दरसता
कामनाओं के सपन अरु प्राप्त मेरे
दृष्टि से क्रमशः निकलते जा रहे हैं
निकल जाने दो सभी को,शेष रहने
दो उन्हीं को जो उपेक्षित आ रहे हैं।

★ ★ ★

८६- मेरा अभिमान

है मुझे अभिमान तेरे जानने का;

बिम्ब तेरा, गीत में मेरे निहित है ।

विश्व मेरे गीत में छबि देख तेरी

पूछता है, "कौन है यह ?" अति चकित है ।

मौन रह जाता
नहीं होता मुखर मैं
बहुत बोला तो कहा
यह, - "कौन जाने"

कुड़बुड़ा कर, फेर
कर मुख चल दिये जन
मैं रहा निश्चिन्त;
वे जाने न जाने ।

छबि तुम्हारी प्रति-पहर मुस्कान करती
अमर गीतों में तुम्हारी कथा कहता ।
हृदय तेरे गीत का निर्झर बहाता
रूप में तेरे सदा मैं बहा करता

लोग मुझसे पूछते, - "क्या अर्थ इसका"

गीत जो मैंने रचे, "क्या अर्थ उनका"

क्या कहूँ, उनसे सदा ये ही कहा है, -

"कौन जाने अर्थ क्या है, मित्र ! इनका"

कर अवज्ञा

फेर कर मुख

चल दिये वे

मुस्कराता

किन्तु तू

बैठा रहा है ।

★ ★ ★

८७ - यात्रा का अंत

मित्रवर मेरी विदा की यह घड़ी
कामना - मंगल हमारी तुम करो
स्वस्ति का वरदान मुझको दो सखे
और मिलकर तब विदा मेरी करो

प्रात के नभ में घुली है लालिमा
मार्ग अति सुन्दर, सुखद रमणीक है

यह न पूछो पास में पाथेय क्या
आश ही की आश मुझको एक है ।

हाथ खाली किन्तु मन आशा भरा
इसलिये प्रस्थान में भय कुछ नहीं

यात्रा प्रारम्भ की है पार की
इसलिये पाथेय की चिन्ता नहीं ।

ब्याह का मंगल-वसन मैं धार कर
पथ पथिक हूँगा । न पहनूंगा कभी -

लाल वर्दी फौजियों सी देह पर
मार्ग के संकट सहूँगा मैं सभी ।

शेष जब होगी हमारी यात्रा
दीप नभ का चरण में होगा पड़ा
आप शहनाई मुझे होगी श्रवण
द्वार पर उस राज के हूँगा खड़ा

★ ★ ★

८८ - ब्रह्ममाया

देता जाऊँ मैं महत्त्व अपने को प्रतिक्षण

अपना ताना-बाना चारों ओर बिछाऊँ

रंगीनी छायाएं विस्तृत करता जाऊँ

तेरी उज्वलता पर अपना अङ्क लगाऊँ ।

ये तेरी माया है - तू अपने ही से नित

अपने को बहु भागों में बाँटा करता है

और विविध रूपों में अपना रूप सजा कर

अलग अलग नामों से सम्बोधन पाता है

तेरी इस विभक्ति से ही यह देह बनी है

तेरे ही गीतों की प्रतिध्वनि नभ का गुंजन

भय, आशा, मुस्कान जगत में व्याप रही जो

तेरी ही इच्छा है, यह तेरा है रञ्जन ।

लहरें उठती हैं हिय-सागर में फिर गिरतीं

स्वप्न जगाए जाते हैं पर फिर मिट जाते

मुझसे ही प्रतिबिम्बित तेरी जीत-हार है

मेरे कारक हैं तेरे प्रतिबिम्ब बनाते

परदा जो डाला है तू ने जगत - मञ्च पर

दिवस रात्रि के चित्र असंख्य उतरते उस पर

उसके पीछे तेरा सिंहासन रक्खा है

चकित कर-रही-सी रेखाएं उभरी जिस पर

अजब रहस्यमय ताने बाने बुने गये हैं

रेखा सीधी नहीं दृष्टिगत एक वहाँ पर

नभ के पट में छिपा प्रदर्शन तेरा-मेरा

अरे कहाँ जा पाती जग की दृष्टि वहाँ पर

देवलोक तेरी-मेरी तानों से गूँजा

तेरी निधियों की जग करता आया पूजा,

युग-युग से तू आँखमिचौनी रहा खेलता

किन्तु तुझे भाया मैं केवल और न दूजा ।

★ ★ ★

८६ - जग का हाट

मेरे प्रभु की इच्छा है मैं नाद करूँ ना
जो कुछ भी कहना है मन्द स्वरों में बोलूँ
हृदय-व्यथा यदि अन्तर में अनुभूत हुई है
तो निज गीतों में गुन-गुन कर उसको खोलूँ

राजा की बाजार और जग के मेले में
क्रय-विक्रय कर रहे सिद्ध व्यापारी जग के
किन्तु चढ़े-दिन ही मैंने व्यापार तजा सब
खींच लिया असमय स्वयं को, संयत होके ।

मेरे उपवन में जल्दी ही फूल खिल गए
मधु-माखी, रस-लोभी गुनगुन आए उनपर
दृष्टि गड़ा कर मैंने अंकन किया सभी का
भले-बुरे की माप-तोल ही करी उमर-भर

अब मेरे साथी की इच्छा, - उससे खेलूँ
जो कुछ भी अवकाश शेष है उसको दे दूँ
बिना प्रायोजन ही मुझको है पास, बुलाया
पास बचा ही क्या मेरे, जो उसको दे दूँ !

★ ★ ★

६०- तेरी करुणा

तेरी सूर्य किरण, अपनी बाहों को फैला
नित्य सबेरे मेरी धरती पर आती है
लख मेरे उच्छ्वास, अश्रुगीतों के जलकण
दिन भर खड़ी द्वार पर मेरे रह जाती है ।

तेरी करुणा ही, जो मेरे गीत, अश्रु-जल
वारिद बन कर तेरे चरणों में जाते हैं
तेरे ही कर हैं जो मेरे अवयव लेकर
धुँधले बादल-सा पट तुझ पर ढँक जाते हैं
तू उड्गण से जड़े वक्ष पर उसे ओढ़ता।
और अनेकों रूप बनाकर उसे धारता ।
क्षण-प्रति-क्षण रँग उनका सदा बदलता रहता
नित्य-नयी आभा से रञ्जित वस्त्र धारता

पवन-भार-सम अश्रुस्निग्ध मनहर पट तेरा
कृष्ण-काय का उसको हलका रंग मिला है
इसीलिये तेरे अतिशय शुभ्र प्रखर पुंज को
ढक लेने का, उस पट को अधिकार मिला है ।

★ ★ ★

६१- प्रकाश - धारा

मेरे प्रकाश !
जग के प्रकाश
नयनाभिराम !
छद-मधुर भास !
मेरे प्राणों के
केन्द्र बीच,
तू ही नित
जीवन रहा सींच ।
झन्कार उठी
जब भी अन्दर
तू ने, प्रकाश !
छेड़ा, आकर ।
नभ का पट
खुलता अति सुन्दर,
मारुत बहता ले
गति मन्थर ।
मधु मास उतरता जगती पर
तू ही तू होता कण-कण पर
लहराता ज्योति-पुंज सागर
क्रीड़ा करती तितली आकर
ऊपर उठता है पुंज शिखर
नीचे गिरती है ज्योति लहर

लो लिली खिली फिर -
इधर - उधर
बिखरी जूही की
गंध प्रखर
पैठता प्रकाश —
अम्बर के पथ
बह जाता ओस-कणों
में मथ ।
मोती ले उतरा झूम झूम
तरुवर नाचे सब झूम - झूम
उल्लास भरे प्रति पत्र बीच
जीवन तू सबका रहा सींच ।
उमगी द्युलोक की -
ज्योति - धार,
तट डूब गए सब,
आर - पार ।
चहुँ ओर दृष्टिगत
अब प्रकाश,
नभ में प्रकाश !
भू पर प्रकाश !!
मेरा प्रकाश !!!
जग का प्रकाश !!!

★ ★ ★

६२- मिलन सौरभ

चिर प्रतीक्षारत रहूँ तेरी, प्रभो !
है मुझे आनन्द इसमें ही मिला
निर्निमेषः देखता वह पथ रहूँ
जिस तरफ आभास तेरा है मिला ।
ज्योति की छाया जहाँ अनुगामिनी
और वर्षा ग्रीष्म की अनुचर बनी
देखता अपलक रहूँ उस ओर ही
जिस तरफ निज भावना है योगिनी ।
अब गगन के दूत भी उस मार्ग आ
नित्य अभिनन्दन हमारा कर रहे,
श्वास मीठी छोड़ जाती है हवा
हृदय मेरा हर्ष से सब भर रहे ।
प्रात से संध्या तलक आशा लिये
बाँध आसन, द्वार पर तेरे रहा
आश प्रति क्षण दिव्य क्षण लाती रही
अब मुझे साक्षात् तेरा हो रहा ।
एक आशा के भरोसे नित्य मैं
कभी गाता, मुस्कराता हूँ कभी
और अब देखो कि अपने आप ही
'मिलन-सौरभ' गंध से सुरभित सभी ।

★ ★ ★

९३ - कल्प

प्राण ! मेरे प्राण के; तेरे लिये
स्वच्छ अपने अंग रक्खूंगा सभी
गात का प्रतिपोर तू है छू रहा
तू प्रथक होता नहीं मुझसे कभी

मैं कभी होने न दूँगा धूल-मिली
भावना निज; झूठ के सम्पर्क से ।
सत्य से दीपित हुआ मेरा विवेक
सिद्ध मैंने कर लिया है तर्क से ।

निज हृदय पर पाप का परिवेश भी
मैं कभी भी सहन कर सकता नहीं
क्योंकि मुझको ज्ञात है तेरा निवास,
ज्योति के संग तिमिर रह सकता नहीं ।

कार्य जितने भी करूँगा निज करों
सभी में अभिव्यक्ति तेरी आयगी
सन्निहित तेरी रहेगी प्रेरणा
निज क्रीया तुझको सदा दर्शायगी ।

★ ★ ★

६४- शक्ति की याचना

याचना मेरी, कि कर आघात तू
दीनता के मूल पर फिर फिर प्रबल
दीनता अनुभव करे जब मम हृदय
कर सदा आघात तू उस पर सबल

शक्ति दो, कि दुःख-सुख सम भाव से
गात पर निज नित्य धारण कर सकूँ
शक्ति दो कि नित्य अपने प्रेम को
एक रूपा फलित जग पर कर सकूँ ।

शक्ति दो कि

सहज दोनों रूप हों
किन्तु नत मस्तक न हो अन्याय पर

शक्ति दो कि

मलिन मन मेरा न हो
नित्य के छोटे-बड़े संघर्ष पर

शक्ति दो कि

मैं तुम्हारी आज्ञा
जब कभी पाऊँ तो भूलूँ आप को

शक्ति दो कि

मैं समर्पित कर सकूँ
स्वयम् से ही सदा अपने आपको ।

★ ★ ★

६५- सुखद-वर्षा

आज वारिद झरे झर-झर
बड़े सुन्दर सजल-जलधर
तोड़कर नभ द्वार सत्वर
गिरे बहु निर्झर धरा पर ।
दृष्टिगत नहीं
अन्त जल का
है प्रदर्शन
मेघ-बल का ।
बाँध झोंके तड़तपति हर
झर रहा है हहर हर हर
झील में
वन में, शिखर में
बह रहा जल
इस पहर में ।
केश वारिद के बिखर कर
कर रहे हैं नृत्य सुन्दर
वर्ष इस फिर हो गया मन
मस्त, लख ये सावनी घन ।
लगा घन सँग झूमने मन
हुआ पुलकित पुनःयह तन
आज कलरव जगा मन में
सुख जगा अन्तःकरण में

द्वार के अवरोध टूटे
सावनी जल-बाण छूटे
इस पहर में छोड़ कर घर
जा सकेगा कौन बाहर?

★ ★ ★

९६- आतप के व्रण

मेरे करुणाधन, मेरे प्रभु !
मेरा सूखा है हृदय-ताल
वर्षों से मेघ नहीं आये
बन गया क्षितिज है महाव्याल

बादल का नभ में नाम नहीं
दो बूँद तलक भी पास नहीं
सूखा ही देखा दृष्टि तलक
आशा तक की अब आस नहीं

तेरी यदि इच्छा हो जाये
झंझा आये ज्यों मृत्यु-गाल
चपला के कोड़े दे दे कर
थर्रा दो नभ का महा-थाल

ये हृदय विदारक ग्रीष्म पहर
चुभता तन में, जैसे हो व्रण
घातक, नैराश्य, झुलसते क्षण
प्रभु ! लौटा लो, ये दारिद क्षण

अपनी करुणा के सजल मेघ
पलकों सम झुके लिये आओ
अति रुष्ठ तात की दृष्टि-मध्य
माता-सम सजल नेत्र लाओ ।

९७- तीन कथा

'रश्मि, निद्रित-शिशु दृगों पर
प्रथम आई, तो कहाँ से ?
कौन बूझेगा पहेली ?
कौन परिचित इस कथा से?

वह कथा ऐसी सुनी है—

दूर पर कुछ, गाँव है इक
वास परियों का जहाँ है
सघन वन की शत लतर पर
मात्र दो कलियाँ वहाँ है
सघनता का तिमिर है पर
जुगनुओं की ज्योति भी है
झिलमिलाती ज्योति से उस
रश्मि-दृग पर आ रही है ।

मुस्कुराहट शिशु अधर पर
प्रथम आई, तो कहाँ से ?
कौन बूझेगा पहेली ?
कौन परिचित इस कथा से ?

वह कथा ऐसी सुनी है —

अति अछूती तरुण किरणों
से किया स्पर्श घन का-
दूज के द्विजराज ने जब,
तब हुआ उद्‌भव सपन का ।
उषा भीगी ओस-कण से

प्रथम किरणो के पहर पर —
स्वप्न तब जागा दृगों में
हास फूटा शिशु अधर पर ।

शिशु बदन पर स्निग्ध अरुणाई
जो आई, वह कहाँ से ?
कौन बूझेगा पहेली ?
कौन परिचित इस कथा से ?

वह कथा ऐसी सुनी है—

जननि जब थी तरुण बाला
थी अरुणिमा तभी आई
और फिर कोमल हृदय में
रह गयी थी वह समायी
मौन मिश्रित मधुर रस में
था हृदय आवृत्त समुचित
शिशु बदन पर दृष्टिगत जो
है वही माधुर्य्य विरचित ।

* * *

६८- दर्शन की अभिलाषा

एक क्षण का दे मुझे अवकाश प्रियतम

पास तेरे बैठ पाऊँ दर्शनों को

हाथ के सब काम फिर पूरे करूँगा

रूप का अनुदान दे-दे लोचनों को ।

दृष्टि तू होता नहीं जब

शान्ति अरु विश्राम खोता

सकल-जीवन-कार्य मेरा

सिन्धु-सा विस्तीर्ण होता ।

आज मेरे सहन में उच्छ्‌वास आया

ऊष्ण सासों को लिये मधुमास आया

खिलीं कलियाँ, फूल फूला, मुस्कुराया

प्रेम से मधु-मक्खियों ने गुनगुनाया

इस पहर में चाहता मन, मौन बैठूँ

और लोचन-पात्र में लूँ रूप तेरा

बीत जाये आयु सब अवकाश क्षण में

हो समर्पण-गीत ही से अन्त मेरा ।

★ ★ ★

६६- बन्धनों से मुक्ति

मुक्ति केवल है नहीं वैराग्य में
साधना वैराग्य की मैं क्यों करूँ ?
राग में भी मुक्ति का अनुभव मिला
क्यों न मैं फिर बन्धनों को ही वरूँ !

निज जगत के अनगिनत लघु दीप मैं
दीप्त कर लूँगा तुम्हारी अग्नि से
यज्ञ वेदी पर धरूँगा दीप सब
शुभ्र मन-मन्दिर करूँगा वह्नि से ।

इन्द्रियों को मैं न रक्खूँगा कभी
संयमों के कठिन कारावास में,
श्रवण, दर्शन और शुभ स्पर्श से
भास तेरा ही रहेगा पास में

दीप्त होगा यज्ञ जब आनन्द का ।
भ्रमित-समिधाएं सभी जल जाएंगी
प्रेम-फल परिपक्वता को पाएगा
वासनाएं फूल सी झर जाएंगी

★ ★ ★

१००- अखण्ड पूर्णता

सृष्टि का सर्जन हुआ था जब नया
थी नयी आभा सितारों में निहित
सुपदगण आकाश में एकत्र हो
पूर्णता का गीत करते थे ध्वनित —
" अहा कैसी पूर्णता है दिव्य यह !
विश्व में परिपूर्णता का राज है
ज्योति की माला सजी आकाश पर
क्या अनोखा इस प्रकृति का साज है !'

गीत के ही बीच टूटा हार वह
एक तारा क्षितिज पथ पर खो गया
चकित सारे देवतागण हो गये
वीण का संगीत सारा सो गया
एक चर्चा चल पड़ी प्रत्येक में —
" श्रेष्ठ तारा था वही जो खो गया
था वही सिरमौर सारे व्योम का
एक हीरा था वही, जो खो गया"

उस दिवस से निरंत अन्वेषण हुये
एक स्वर से बात यह सबने कही
ज्योति जो थी दिव्यतम् उसमें निहित
अब किसी में भी तनिक मिलती नहीं
मुस्कराये गगन के तारे सभी
फुस्फुसाये परस्पर यह बात कह —
" सृष्टि तो रहती सदा सम्पूर्ण है
क्यों नहीं जग पा रहा आघात सह ?"

१०१ - दिव्य-स्वातन्त्र्य

रहता जहाँ निर्भय हृदय
मस्तक न झुकता है कभी
दिखती नहीं है जिस जगह
अन्याय की छाया कभी
नहीं शुल्क लगता ज्ञान का
संकीर्ण प्राचीरें नहीं
नहिं एकता खण्डित जहाँ
धर-धर प्रथक दुनिया नहीं
सत्-स्रोत को, केवल हुआ
उद्भव जहाँ पर शब्द का
गाम्भीर्य ही है निधि जहाँ
नहिं प्रश्न है प्रारब्ध का
है पूर्णता के हित जहाँ
उद्यम सदा ही अग्रसर
अरु रूढ़ि की मरुभूमि में,
सूखा जहाँ न विवेक-सर
तेरा जहाँ नेतृत्व है
विस्तार मन पाता जहाँ
विस्तीर्ण होते भाव हैं
चिन्तन सदा जगता जहाँ
उस दिव्य ज्योतित ज्योति के
स्वातन्त्र्य में निज देश हो
जागा करे नित सूर्य्य-सा
शोषण नहीं अवशेष हो ।

* * *

५० बंगला गीतों की प्रथम पंक्तियां । कोष्ठों में रूपांतरित गीतों की क्रमसंख्या दी गई है ।

आज धारि झरे झरझर (६५), आनन्देरि सागर थेके (१६), आजि श्रावण-घन गहन-मोहे (१२), आज झडेर राते (१४), आषाढ़ सन्ध्या घनिये एलो (११), आर नाई रे बेला (१८), आमि हेथाय थाक शुधु (२०), आमार मिलन लागि तुमि (२२), आकाश तले उठलो फुटे (३४), आज बसन्त जागृत दुआरे (४४), आमार खेला जखन छिलो (३६), आबार एसे छे आषाढ़ (५२), आरो आघात सइबे अमार (५०), आर आमय आमि निजे शिरे (५५), एइ तो तोमार प्रेम (१६) एइ ज्योत्सना राते (४२), एकल आमि बाहिर होलेम (५४), एकि नमस्कारे प्रभु (६६), एकाधारे तुमि आकाश, तुमि नीड़ (७८), ओगो मौन ना जदि को (४५), ओगो आमार जीवनेर एइ शेष परिपूर्णता (५८), कतो आजानारे जानाइले तुमि (३), गाये आमार पुलक लागे (२५), गान दिये जे तोमाय खुंजि (५६), चित्त जेथा भय शुन्य उच्च जेथा शिर (१०१), छिन्न कोरे लाओ हे मोरे (४८), जननी तोमार करुण चरण ध्वनि (३५), जगते आनन्द यज्ञ आमार निमंत्रण (२६), जाओ आमि औरे (१५), जे दिन फुटलो कमल किछुइ जानि नाई (७१), जदि तोमार देखा न पाई प्रभु (७), जेथाय थाके शबार अधम (३१), जा दिये छे आमार ए प्राण भरि (६२), जड़ाये आछे बाधा, छड़ाये देते चाई (६८), जबार दिजे एइ कथा टि (५३), जीवन जखन शुकाए जाय (३७), तब सिंहासनेर आसन हते (३६), ताई तोमार आनन्द आमार पर अधीन (३३), तुमि एबार आसाय (३८), तोरा शुनिस ना कि (४१), तुमि जखन गान गाहिते बोलो (४३), तोमाय चिनि बोले आमि करछि गरब (८६), तोमार दया जदि चाहिते नाओ जानि (६५), तोमार सोनार थालाय साजाबो अज (१०), तुमि केमन गान कोरो (१३), दाओ हे आमार भय भेंगे दाओ (२१), दिवस जादि सांग होलो (७३), पारबि ना कि जोग दिते (२३), प्रभु गृह हते आसिले जे दिन (२८) बन्दी तोरे के बेंधेछे एक कठिन कारा (७५) ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का वंश तथा संक्षिप्त जीवन परिचय

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नाटक 'वेणी-संहार' के रचयिता भट्टनारायण जो कन्नौज के ब्राह्मण थे आदिशूर के आमंत्रण से बंगाल में जा बसे । इन्हीं के वंशज पुरुषोत्तम ने यशोहर में पिराली वंश के ब्राह्मण की कन्या से विवाह किया और वहीं बस गये । पुरुषोत्तम के पुत्र बलराम हुये और फिर हरिहर, रामानन्द, महेश और पंचानन क्रमगत पिता-पुत्र होते आये । पंचानन यशोहर से हुगली-तट पर गोविन्दपुर में आकर बसे । यहाँ पर अति उपेक्षित लोग बसते थे । पंचानन जी के रहने से लोग उन्हें आदर देने के नाते ठाकुर कह कर सम्बोधित करने लगे । पंचानन ठाकुर का वंश आगे चल कर रवीन्द्र का घराना हुआ । वंश के उत्तराधिकारी इस प्रकार से हुये—

पंचानन-जयराम-नीलमणि-रामलोचन-द्वारकानाथ-देवेन्द्रनाथ-रवीन्द्रनाथ और फिर रवीन्द्रनाथ के पुत्र रथीन्द्रनाथ जी ।

यह परिवार पहले कट्टर सनातनी था किन्तु महर्षि द्वारकानाथ ने राजा राममोहन राय द्वारा संस्थापित ब्रह्मसमाज को १८४२ ई० में अपनाया । द्वारकानाथ के पुत्र और रवीन्द्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ ने ब्रह्मसमाज का खूब प्रचार किया, किन्तु उनकी पत्नी मरते दम तक कट्टर सनातनी रहीं ।

रवीन्द्रनाथ जी अपने भाइयों में सबसे छोटे थे । अन्य भाई भी विभिन्न क्षेत्रों में अपनी-अपनी जगह अद्वितीय ठहरे ।

जन्म — जोड़ासाको भवन कलकत्ता में ६ मई १८६१ ई० में हुआ। माता की मृत्यु बाल्यकाल में ही हो गयी । बचपन इसी भवन में कलकत्ते में ही बीता ।

शिक्षा— मुख्यतः घर पर हुई । नार्मल स्कूल के अध्यापक नीलकमल घोषाल इनके प्रथम गुरु थे । अन्य अध्यापकों में सुबोध चन्द्र, सीता नाथ दत्त व सच्चिदानन्द

का नाम उल्लेखनीय है । आपको अंग्रेजी से बहुत चिढ़ थी । एक जगह पर आपने स्वयं लिखा है "(अंग्रेजी) पाठ्य विषय की ड्योढ़ी पर सिलेबुलों के द्वारा अलग किया हुआ उच्चारण और ऐक्सेण्टों को देखिये तो आप समझेंगे कि किसी की जान लेने के लिये बन्दूक पर संगीन चढ़ाई गयी है ।" स्कूल के नाम पर आप केवल नार्मल स्कूल में पढ़े फिर वहाँ से नाम कटवा कर बंगाल एकाडमी में भर्ती हुये । वहाँ भी मन न लगा । पिता बहुत असंतुष्ट हुये । उन्होने इन्हें १६ वर्ष की आयु में ही २० सितम्बर १८७७ में इंगलैण्ड भेज दिया । ४ नवम्बर १८७८ में रवीन्द्रनाथ एक विदेशी डिग्री लेकर लौट आये ।

प्रथम काव्य संग्रह— "कवि काहिनी" के नाम से ई० सन् १८७८ में पहला काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ ।

प्रथम उपन्यास— १८७६ में 'करुणा' नामक उपन्यास लिखा । इसमें ये सफल नहीं हुये । १८८३ में प्रकाशित 'बउठाकुराणीर हाट' नामक उपन्यास से वे उपन्यासकार के रूप में मान्य हुये ।

प्रथम संगीत नाटक - १८८१ ई० में 'बालमीकि प्रतिभा' नामक प्रथम संगीत नाटक प्रकाशित हुआ ।

प्रथम गद्य नाटक- १८८४ ई० में 'प्रकृतिर प्रतिशोध' नामक प्रथम गद्यनाटक प्रकाशित हुआ ।

विवाह- दिसम्बर १८८३ में २२ वर्ष की आयु में विवाह हुआ ।

सम्पादक- १६०१ में वे 'बंगदर्शन' के सम्पादक हुये ।

पत्नी निधन- १६०२ ई० में आपकी पत्नी का देहान्त हो गया ।

बंग-भंग आन्दोलन- १६०५ में आपने आन्दोलन में प्रमुख रूप से भाग लिया और अनेकानेक अंग्रेजी के पत्रों में तर्कपूर्ण लेख लिखे ।

गीताञ्जलि- मूल बंगला गीतांजली का प्रकाशन १६१० ई० में हुआ किन्तु इसके पूर्व १६०१ में 'नैवेद्य' और १६०६ में 'खेया' नामक दो काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके थे जिसमें से कुछ गीतों को लेकर रवीन्द्रनाथ जी ने अंग्रेजी की गीताञ्जलि का चयन किया ।

पुनः इंगलैण्ड यात्रा- १६१२ में रवीन्द्रनाथ जी ने गीतांजली को अंग्रेजी में अनूदित कर इंगलैण्ड की यात्रा पुनः की ।

शान्ति-निकेतन- १६१२ में ही आपने भारतीय-आश्रम पद्धति के अनुसार बोलपुर में शान्ति-निकेतन की स्थापना की । इस समय केवल ५ छात्र ही इस आश्रम में थे ।

नोबेल पुरस्कार- १६१३ में आपको ५२ वर्ष की अवस्था में नोबेल पुरस्कार मिला जिसका मूल्य ८००० पौण्ड (उस समय) होता था ।

डाक्टरेट की उपाधि- १६१३ ही में भारत आने पर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर की उपाधि से सुशोभित किया ।

नाईटहुड- १६१४ में अंग्रेजी सरकार ने अपने राज्य के उच्चतम् आदर की उपाधि नाईटहुड को इन्हें प्रदान किया । (थोड़े ही दिन बाद गुरुदेव ने नाईटहुड को अंग्रेजी सरकार को वापस कर दिया था)

बीमार- १६४० में आप बीमार हुये । इसी अवस्था में आपने 'रोग शय्याय' नामक काव्य संग्रह लिखा । इसके बाद वे कुछ अच्छे हो गये थे ।

मृत्यु- ७ अगस्त १६४१ को आपका निधन अस्सी वर्ष प्राप्त कर लेने के बाद हुआ ।

रवीन्द्र-पद्य-साहित्य-तालिका

(त्रैमासिक विश्व-भारती रवीन्द्र-जयन्ती अंक के आधार पर)

संगीत - नाटक	प्रकाशन वर्ष
(१) बाल्मीप्रतिभा	१८८१
(२) भग्न ह्रदय	"
(३) रूद्र छन्द	"
(४) काल-मृगया	१८८२
(५) मायार खेला	१८८८
(६) राजा ओ रानी	१८८६
(७) विसर्जन	१८६०
(८) चित्रांगदा	१८६२
(६) काहिनी	१६००
(१०) बसंत	१६२३
(११) ऋतु रंग	१६२७
(१२) नवीन	१६३१
(१३) शाप मोचन	"
(१४) नृत्य नाट्य चित्रांगदा	१६३६
(१५) नृत्य नाट्य श्यामा	१६३६
(१६) नृत्य नाट्य चंडालिका	"

कविता संग्रह	प्रकाशन वर्ष
(१) कवि काहिनी	१८७८
(२) बन-फूल	१८८०
(३) संध्या संगीत	१८८२
(४) प्रभात संगीत	१८८३
(५) छबि ओ गान	१८८४
(६) शैशव संगीत	"
(७) भानुसिंह ठाकुरेर पदावली	"
(८) कड़ि ओ कोमल	१८८६
(६) मानसी	१८६०
(१०) सोनार तरी	१८६४
(११) नदी	१८६६
(१२) चित्रा	"
(१३) कणिका	१८६६
(१४) कथा	१६००
(१५) कल्पना	"
(१६) क्षणिका	"
(१७) नैवेद्य	१६०१
(१८) शिवाजी उत्सव	१६०४
(१६) स्वदेश	१६०५
(२०) बाउल	"
(२१) खेया	१६०६
(२२) कथाओ काहिनी	१६०८
(२३) शिशु	१६०६
(२४) चयनिका	"
(२५) उत्सर्ग	१६१४
(२६) बलाका	१६१६

(२७) काव्य-गीति	१९१९
(२८) पुरबी	१९२५
(२९) प्रवाहिनी	"
(३०) लेखन	१९२७
(३१) महुआ	१९२९
(३२) बनवाणी	१९३१
(३३) संचयिता	१९३१
(३४) परिशेष	१९३२
(३५) विचित्रा	१९३३
(३६) शेष सप्तक	१९३५
(३७) बीथिका	"
(३८) पत्रपूट★	१९३६
(३९) श्यामली★	"

(★गद्य कविताएं)

(४०) खाप छाड़ा	१९३७
(४१) छड़ा ओ छबि	"
(४२) प्रान्तिक	"
(४३) सेंजुति	१९३८
(४४) प्रहासिनी	"
(४५) आकाश प्रदीप	१९३९
(४६) नव जातक	१९४०
(४७) सानाई	१९४०
(४८) रोग शैय्याय	"
(४९) आरोग्य	१९४१
(५०) जन्मदिने	"

गीत-संग्रह व स्वर लि
गानों के संग्रह

(१) रवि छाया
(२) वाल्मीकि प्रतिभा
(३) गान (१)
(४) गीतिलिपि (३भाग)
(५) गीतांजलि
(६) " (अंग्रेजी)
(७) गीति माल्य
(८) गीतालि
(९) गान [२]
(१०) गान[३]
(११) धर्म संगीत
(१२) गीति लेखा (१)
(१३) वैतालिका
(१४) गीति-वीथिका
(१५) केतिक
(१६) गीत लेखा (२)
(१७) वर्षा-मंगल
(१८) नव-गीतिका (१२)
(१९) गीति मालिका
(२०) गीतोत्सव
(इसी वर्ष 'गीतवितान' नाम ११२८ गीतों का प्रकाशन सहित किया गया)
(२१) गीत वितान

(३५७ गीतों का संग्रह)

(२२) श्रवण गाथा १९३४

(२३) स्वर वितान (१) १९३५

(२४) " (२) १९३६

(२५) " (३) १९३८

(२६) गीत वितान (१) १९३८

(६७२ गीतों का संग्रह)

(२७) गीत वितान (२) १९३९

(८३५ गितों का संग्रह)

(२८) स्वर वितान (४) १९४०

विशेष

रवीन्द्रनाथ जी ने १००० से अधिक कविताएं और २००० के लगभग गीत (जो अपने आप में काव्य भी हैं) लिखे ।

गीतांजलि रवीन्द्रनाथ जी के गीतों का संग्रह है जिसके दो प्रकार के सस्करण हैं । पहला बंगला का जिसमें १५७ गीत हैं और दूसरा अंग्रेजी का जिस पर नोबेल पुरस्कार मिला, इसमें २०३ गीत हैं । अंग्रेजी का संस्करण तैयार करते समय कवि ने अपने कुछ अन्य काव्यसंग्रहों से, जैसे खेया, नैवेद्य, चयनिका तथा चैताली आदि से भी गीत जोड़ दिए थे ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर से साहित्य का कोई भी अंग अछूता नहीं रहा । आपने नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचनाएं, व्यंग, प्रहसन, पत्र-साहित्य आदि सभी प्रकार की सामग्री बंगला भाषा व साहित्य को दी और विश्व में भारत राष्ट्र का मस्तक ऊँचा किया ।

श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' द्वारा अनूदित रवीन्द्र नाथ जी का अन्तिम गीत (मुक्त छन्द)

तुम निज सृष्टि-पथ रखती हो घेर कर, अद्भुत छल जाल से,
हे छलनामयी !
मिथ्या-विश्वास-फन्द फैला योग कर से सरल इस जीवन में
इस छलना से तुम अपने महत्व को करती हो चिन्हित;
उसके लिये न रखी गुप्त घन-रजनी ।
तारा तुम्हारा उसे जो पथ दिखाता है ।
उसका वह अन्तः पथ वह चिर स्वच्छ है
सहज विश्वास से वह करता है उसे चिर अति उज्ज्वल
वाह्य है कुटिल पर अन्तर सरल है
यही तो महत्ता है। लोग उसे करते विडम्बित हैं ।

सत्य वह पाता है, अपनी प्रभा से धौत अपने ही अन्तर मे
कुछ भी न सकता कर उसको प्रवञ्चित,
पुरस्कार अन्तिम ले जाता है, निज भाण्डार में ।
करता है अङ्गीकार हर्ष से जो छलना
पाता तब हाथों से
अक्षय अधिकार वह शान्ति का ।

:० जूलाई १६४१ को प्रातः ६.३० बजे लिखा गया

जिस विशेषता के लिये और जिन शब्दों के साथ
रवीन्द्रनाथ जी को नोबेल पुरस्कार मिला था, वे इस प्रकार थे -

"For, reasons of the inner depth and the high aim revealed in his poetic writings; also for the brilliant way in which he translates the beauty and freshness of his oriental thought into the accepted forms of western *belles-lettres*."

कैलाश कल्पित की प्रकाशित पुस्तकें

उपलब्ध पुस्तकों के प्रकाशक

विधा	पुस्तक	प्रकाशक	मूल्य
उपन्यास -	दुनिया गोल है (लखनऊ की गलियाँ)		
	चारुचित्रा (पुरस्कृत)	किताबघर, नई दिल्ली-२	७५/-
	शुभ्रा	"	२७/-
	युगबोध	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-६	५०/-
	स्वराज जिन्दाबाद	ग्रंथ एकाडमी, नई दिल्ली-२	६०/-
	वैज्ञानिक गोरिल्ला	संगम प्रकाशन, इलाहाबाद-३	१५/-
कहानी संग्रह -	राख और आग		
	काला साहब गोरी मेम		
	इण्डिया रिटर्न		
	सितारे अँधेरे के (पुरस्कृत)	भारती भण्डार इलाहाबाद	५०/-
	प्रतीक मानवता के	संगम प्रकाशन इलाहाबाद	५०/-
इण्टरव्यूज -	साहित्य के साथी		
	साहित्य साधिकाएं		
	साहित्यकारों के संग	किताब घर, नई दिल्ली-२	६०/-
पत्र साहित्य -	रवीन्द्र पत्रांजलि	पारिजात प्रकाशन, इलाहाबाद-३	
	पत्रों के दर्पण से शरतचन्द्र		
	पत्र लेखन कला	श्री विष्णु आर्ट प्रेस, इलाहाबाद-३	४०/-
	सृजन-पथ के पत्र	पारिजात प्रकाशन, इलाहाबाद-३	१४०/-
काव्य -	रवीन्द्र गीतांजलि (पुरस्कृत) एवं पत्रांजलि	पारिजात प्रकाशन, इलाहाबाद-३	६०/-
	इन्द्र बेला और नागफनी		
	अनुभूतियों की अजन्ता (पुरस्कृत)		

	आग लगा दो	पारिजात प्रकाशन, इलाहाबाद-३	६/-
	गीत-गरिमा	"	४५/-
	गाँधी जी का चौथा बन्दर	"	१५/-
नाटक –	संत्रास	पारिजात प्रकाशन इलाहाबाद	४/-
	अपूर्ण सम्पूर्ण (प्रकाशनाधीन)		
बाल साहित्य -	चूहा व्यापारी	संगम प्रकाशन, इलाहाबाद	१०/-
	वीरांगना दुर्गावती	(विष्णु आर्ट प्रेस, इलाहाबाद)	१५/-
जीवनी –	आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण और		२०/-
	राम मनोहर लोहिया	विष्णु आर्ट प्रेस, इलाहाबाद-३	
निबन्ध –	चिन्तन अनुचिन्तन (प्रकाशनाधीन)		
	निराला के सम्पर्क में बारह वर्ष (प्रकाशनाधीन)		
विविधा –	बापू के विचार, राजकाज हिन्दी संदर्भिका		

★ जिन पुस्तकों के आगे मूल्य छपे हैं, मात्र वे ही उपलब्ध हैं।

पारिजात प्रकाशन

कोठी गोविन्द भवन
३७, शिवचरण लाल रोड
इलाहाबाद-३

पत्राञ्जलि

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा
लिखे गये
१०० पत्रों का सार-संचयन

अनुवादक एवं सम्पादक
कैलाश कल्पित

पारिजात प्रकाशन
इलाहाबाद - ३

प्रथम संस्करण मार्च १९९१
द्वितीय संस्करण जून १९९४

मूल्य मिथुन संस्करण
२०/- + ५०/- = ७०/-

प्रकाशक
पारिजात प्रकाशन
कोठी, गोविंद भवन
३७, शिवचरण लाल रोड, इलाहाबाद

मुद्रक
वीनस प्रिन्टर्स एण्ड ब्लाक मेकर्स
२५६, चक जीरो रोड, इलाहाबाद - ३

RAVINDRA PATRANJALI - KAILASI
Paarijaat Prakashan, Allahabad - 3

पत्र लेखन की कला सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान के प्रस्फुटन के साथ ही विकसित होती रही है किन्तु उसका साहित्यिक मूल्य बहुत थोड़े वर्षों से ही आंका गया है। हिन्दी में सर्व प्रथम स्वामी दयानन्द के पत्रों का संकलन प्रकाशित हुआ। स्वामीजी के व्यक्तित्व का यह एक नया मूल्यांकन था और इस मार्ग से जो उपलब्धि हुई वह दयानन्द स्वामी के भाषण, सम्भाषण और प्रवचनों से कहीं अधिक निकट का व्यक्ति-सर्वेक्षण प्रमाणित हुआ। अंग्रेजी साहित्य में तो कीट्स के पत्रों ने ही कीट्स की कविताओं का रहस्योद्‌घाटन किया था। ए० जी० गार्डनर महोदय ने पत्र-साहित्य के महत्व पर बहुत कुछ लिखा है। इधर हिन्दी में बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने लेखों द्वारा सबसे पहले पत्र-साहित्य की महत्ता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। उनकी पुस्तक 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' महत्वपूर्ण संकलन है। किशोरीदास वाजपेयी का संकलन 'साहित्यकों के पत्र' तथा श्री बैजनाथसिंह विनोद का संकलन 'द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र' आधुनिक हिन्दी के निर्माताओं का वह पक्ष प्रस्तुत करता है जो उनके संघर्ष और व्यवहारिक क्षमता के साथ ही साथ उनके व्यक्तिगत विनोद की छाया भी देता है। इसी दृष्टिकोण से श्री विनोदशंकर व्यास द्वारा सम्पादित 'प्रसाद और उनके समकालीन' नामक पत्र-संकलन भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है, इसमें जयशंकर 'प्रसाद', श्यामसुन्दर दास, बेढब बनारसी, मुन्शी प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, रामनाथ 'सुमन', आचार्य शिवपूजन सहाय, रूपनरायण पाण्डेय, ज्वालादत्त शर्मा, लोचन प्रसाद पाण्डेय, जैनेन्द्र कुमार, रामवृक्ष बेनीपुरी, जी०

पी० श्रीवास्तव, महादेव प्रसाद सेठ, और नवजादिकलाल श्रीवास्तव आदि विशिष्ट साहित्यकारों के पत्र संकलित हैं।

'बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र' लिखकर वियोगीहरि ने आधुनिक भारत के राजनीतिक क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्तियों के बहुमूल्य संस्मरण हिन्दी को उपलब्ध कर दिये हैं। इस पुस्तक में महात्मा गाँधी, महादेव देसाई, ठक्कर बापा, किशोरीलाल मशरूवाला, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन और आचार्य विनोबाभावे के पत्र संग्रहीत हैं।

उर्दू में 'खुतूते ग़ालिब' लाखों की संख्या बिक चुका है और 'हाली', 'अकबर इलाहाबादी', 'न्यास' व 'सर सैयद अहमद खाँ' के पत्रों का संकलन भी प्रकाश में आ चुका है जिससे हिन्दी का पाठक अंशतः अभिज्ञ है।

बंगला में शरतचन्द्र, बंकिम और रवीन्द्रनाथ जैसे ख्यातिनामा साहित्यकारों के ही नहीं उनके उत्तरकालीन भी अनेक साहित्यकारों के पत्र पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उन पत्रों से संकलित की गयी है जो उन्होंने अपने मित्र श्री सी० एफ़० एण्ड्रूज़ को समय समय पर लिखे थे। इन पत्रों में रवि बाबू का लगभग सम्पूर्ण व्यक्तित्व,—विचार, चिन्तन और मनन के साथ सिमट आया है।

आज के व्यस्त जीवन में जनगण के लिये साधारणतः यह सम्भव नहीं होता कि वह दिग्गज साहित्यकारों के विशाल ग्रन्थों का आद्योपान्त अध्ययन कर उनके स्वस्थ्य विचारों की उपलब्धि कर सकें। उनकी इस समस्या को रवीन्द्र के जीवन व चिन्तन से सम्बन्धित जिज्ञासा को तृप्त करने के लिये यह प्रयास

किया गया है मेरे लिये यह कहना तो कठिन है कि गुरुदेव के पत्रों से जो अंश मैंने लिये है वे ही उन पत्रों का सार है फिर भी यह कहने में मुझे संकोच नहीं है कि जो सामग्री मैंने जुटाई है उसको एक बार पढ़ लेने के बाद विश्वकवि के उस महत्व को सहज ही समझा जा सकता है जिसके लिये हमने और हमारी सरकार ने राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर शताब्दि समारोह वर्ष भर तक मनाने का निश्चय किया है।

विजयादशमी १९६१. कैलाश कल्पित

२१५। ६५, चक, इलाहाबाद

दूसरे संस्करण की भूमिका

यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि गीतांजलि के दूसरे संस्करण के साथ रवीन्द्र पत्रांजलि का भी दूसरा संस्करण ३३ वर्ष के बाद वर्तमान् पीढ़ी के सामने आ रहा है। इस लम्बे अन्तराल में समाज में साहित्य के प्रति अभिरुचि काफी घट गई है, फिर भी विपुल साहित्य के प्रकाशन के साथ ही बच्चन जी और सुमित्रानन्दन पंत के पत्र, अंचल और डा० जीवन प्रकाश जोशी के पत्र, केदार नाथ अग्रवाल और डा० रामविलास शर्मा के पत्र तथा 'सृजन-पथ के पत्र : कुछ प्रेषित कुछ प्राप्त' के नाम से ४७५ पत्रों का संकलन मेरे साहित्यिक अभियान से जुड़े अभी १९९३ में ही प्रकाशित हो चुके हैं।

आशा है साहित्यिक अभिरुचि-सम्पन्न व्यक्तियों को इन पत्रों से गीतांजलि से कम आनन्द नहीं मिलेगा।

कोठी, गोविन्द भवन कैलाश कल्पित

३७, शिवचरण लाल रोड, इलाहाबाद १५-९-९४

"वह मूर्ख जो अपनी अकर्मण्यता से सन्तुष्ट है और चाहे जो भी हो चिन्तामुक्त है, किन्तु जो संसार को बदल देना चाहता है थोड़ा भी चैन नहीं पाता।"

एक मन्त्र

"हम पहले इन्सान हैं बाद में विद्वान।"

"मेरा साहित्य समझने के लिये 'पोस्ट आफिस' पढ़ो। मेरे साहित्य का एक ही उद्देश्य रहा है—शांत का अनन्त के साथ एवं अनन्त का शान्त के साथ सम्मिलन।"

शान्ति निकेतन १० फरवरी '१४

कोलाहल भरे मेरे दिन अभी समाप्त नहीं हुये। वास्तविकता तो यह है कि मैं अभी व्यवस्थित होकर अपने कार्य में लग नहीं पाया हूँ और साथ ही मुझे विश्राम भी नहीं मिल रहा। प्रतिदिन नये-नये रूप से बाधाएं आती हैं, आखिर मैंने निश्चय कर लिया है कि अब न तो निमंत्रण पत्रों पर ध्यान दूँगा, न पत्रों के उत्तर। मैं पूर्णतः अभद्र बन जाऊंगा।

......मेरी समझ में यह नहीं आता कि हम ऋतुओं की पुकार के प्रति बहरे कैसे रहें और मूर्खता का वह व्यवहार कैसे करें, जिसके अर्थ शिशिर और वसंत में एक हों और हम मनुष्य होकर नित्य उसी ढर्रे से चलते रहें जिससे कभी भी असंगत न होने की सम्भवता नहीं है। कुछ भी हो, आजकल मैं अपनी धुन में उस स्तर पर मस्त हूँ जहाँ मनुष्य यह भूल जाता है कि उसका कोई उत्तरदायित्व भी है।

शान्तिनिकेतन, ४ मार्च '१४

यह दयनीय व्यापार है कि दूसरे को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया जाय और साथ ही अपने पास इतना भी न हो कि हम दूसरे को दे सकें।

शान्तिनिकेतन, १० मई '१४

पहाड़ों पर मेरे साथ रहने के लिये कब आ रहे हो?... इन छुट्टियों में मैं तुमको काम नहीं करने दूँगा। हमारा कोई विशेष कार्यक्रम छुट्टियों के लिये नहीं होना चाहिये। इस बात पर हम दोनों एकमत हों कि जबतक आलस्य स्वयं हमारे लिये दूभर न हो जाय, हम पूरी तरह से छुट्टियों को नष्ट करें। हम एक-आध महीने के लिये यह सहन कर सकते हैं कि हम समाज के उपयोगी सदस्य न रहें।

❁

रामगढ़, १४ मई '१४

यहां मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं उसी जगह आ गया हूँ जिसकी मुझे सबसे अधिक आवश्यकता थी। मैं बंगाल के मैदानों के प्रति अश्रद्धाभाव से चिढ़ता था,... पर हर्ष की बात है कि कवि का हृदय अस्थिर होता है।... मैं क्षमा याचना करता हुआ पिता हिमालय के समक्ष घुटने टेक रहा हूँ कि अपने अंधविश्वास के कारण मैं इतने समय तक उससे दूर रहा। चारों ओर की पहाड़ियाँ मुझे अनोखी श्रद्धामय दिखाई दे रही हैं, इनमें शान्ति और सूर्य-प्रकाश झलका पड़ता है जो [illegible] हुआ है।

❁

रामगढ़, १५ मई '१४

इस स्थान की नीरवता ने यह आकस्मिक परिवर्तन उपलब्ध कर दिया है जहाँ आधुनिक जीवन की चिन्ता नहीं रही। यह मेरे मस्तिष्क को प्राकृतिक भोजन दे रहा है। मुझे तो ऐसा लग रहा है मानो पहले मैं आधे आहार पर ही जी रहा था। जब से मैं यहाँ आया हूँ मैंने अपने आपको पा लिया है।

रामगढ़, १७ मई' १४

आज पिताजी के जन्म-दिवस का उत्सव है। अभी-अभी हमने प्रातःकाल की प्रार्थना समाप्त की है और मेरा हृदय उसीसे भरा है।···मैं एक महत्ती आशा की भावना का अनुभव कर रहा हूँ।···शाश्वत सत्य के हृदय में विशुद्ध स्वरूप से जन्म लेना, अपने सारे अस्तित्व के साथ समस्त विश्व के हृदय की धड़कन को अनुभव करना—यही मेरी अन्तरात्मा की पुकार है।

रामगढ़, २२ मई '१४

आध्यात्मिक स्नान जल से नहीं, अग्नि से होता है क्योंकि पानी तो केवल ऊपरी धूल को हटाता है, उस मृत पदार्थ को नहीं जो जीवन से चिपटा हुआ है और व्यक्ति के सौजन्य का दुरुपयोग कर रहा है; अतः हमें बारम्बार अपने-आप को अग्नि के अर्पण करना चाहिये।···अग्नि पाप को भस्म कर देती है किन्तु आत्मा को नहीं।

रामगढ़, २३ मई '१४

···असत्य की बारीक चादर जब जीवन के बहुत बड़े क्षेत्र पर फैली होती है तो उसका देखना और अनुभव करना बहुत कठिन होता है। हम उसके साथ संधि किये रहते हैं।

रामगढ़, २४ मई ७१४

आज मैं पहाड़ी देवदारु की तरह अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। मैं अपने भाग के प्रकाश को आज आकाश से संग्रह करने को प्रस्तुत हूँ।.....मैं जानता हूँ कि शरीर-यंत्र कितना भी जटिल क्यों न हो, जीवन सरल है और केन्द्रीय सरलता के सजीव सत्य को खोने पर सभी वस्तुयें नाश की ओर बढ़ती जाती हैं।

●

रामगढ़, २५ मई १६१४

यद्यपि प्रातः की बेला रात की अपेक्षा असंख्य गुनी बहुरंगी होती है, फिर भी उसमें एक सरलता होती है। वह प्रगट और प्रकाशमान होती है। आशा और आनन्द विजेता की भाँति उषा के साथ प्रगट होते हैं, क्योंकि एक भी काँटा या बाँस की पत्ती छिपी नहीं है। मेरे ऊपर अब प्रातः उदय हुआ है, परछाइयों के साथ मेरी क्रीड़ा समाप्त हो गयी है। जीवन के तरंगमय क्षेत्र को मेरा हृदय निहार रहा है।

●

शान्तिनिकेतन, ७ अक्टूबर'१४

"उपदेशक का काम मुझे छोड़ देना चाहिये और साथ ही दूसरों के सामने परोपकारी देवदूत के रूप में आना भी छोड़ देना चाहिये। मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं अन्दर के प्रकाश से ज्योतित होऊं न कि मात्र अपने हाथ में लिये हुये दीपक से।

दार्जिलिंग, ११ नवम्बर'१४

सच्चा प्रेम हमेशा आश्चर्यमय होता है। हम उसको अंगीकार नहीं कर सकते। अपने लिये तुम्हारे प्रेम को सहर्ष और सधन्यवाद स्वीकार करता हूँ और विस्मयपूर्वक विचार करता हूँ कि उसका मंतव्य क्या समझूँ। हम मनुष्यों में, सम्भवतः अपना एक मूल्य होता है जिससे वह स्वयं अपरिचित रहता है।

···भूमण्डल के प्रत्येक क्षेत्र से आये हुये पत्रों के प्रति धन्यवाद वितरण करते हुये मैं पत्र व्यवहार के जंगल में बुरी तरह खोया हुआ हूँ।

कलकत्ता, १२ नवम्बर'१४

···आलोचक और जासूस स्वभावतः सशंकित होते हैं। जहाँ कुछ भी न हो वहाँ भी वे रूपकों और विस्फोटकों का अनुमान किया करते हैं। हमें अपनी सरलता और निर्दोषता का विश्वास उन्हें दिलाना कठिन है।

···यह मेरी गुप्त बात है और तुम इसे प्रगट न करना। अब चाहे जो भी हो, मुझे पत्रों की पहुँच से दूर रहना है, मैं बिल्कुल अकेला रहने की आवश्यकता समझता हूँ। मैं अब उन वार्षिक उत्सवों, सम्मान पत्रों और सम्मेलनों से मुक्त हो जाऊँगा जिनका इस शरीर पर पैतृक अधिकार नहीं है।

आगरा, ५ दिसम्बर'१४

१७ माडर्न-रिव्यू में यह पढ़ कर कि बोलपुर के बच्चे एक सहायक कोष खोलने के उद्देश्य से, बिना चीनी और घी के अपना काम चला रहे हैं, मुझे आश्चर्य हुआ। क्या तुम इसे ठीक समझते हो ? पहली बात तो यह है कि यह तुम्हारे विदेशी विद्यार्थियों की नकल है और दूसरी बात यह है कि जब तक यह बच्चे हमारी संस्था में रहते हैं, उन्हें अपने भोजन का कोई भी भाग जो उनके स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक है छोड़ने को स्वतन्त्र नहीं हैं।

हमारे बच्चों को इस तरह के आत्मत्याग को स्वीकार करने की आज़ादी ठीक उसी तरह नहीं है जैसे वे अपनी पाठ्य पुस्तकों को खरीदने में स्वतन्त्र नहीं हैं। आत्मत्याग के लिये सबसे अच्छा ढंग होगा—परोपकार के लिये कुछ परिश्रम। स्कूल के छोटे-मोटे काम वे स्वयं करें। बर्तन धोवें, पानी भरें, कुएँ खोदें, राजगीरी करें और इस आराम को छोड़ दें जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं।

इलाहाबाद, १८ दिसम्बर'१४

मेरे अन्दर कुछ ऐसी वस्तु है जो औरों की अपेक्षा मुझे भी कम चकमा नहीं देती। अपने स्वभाव के इस पक्ष के कारण मुझे अपने वाह्य उपकरणों को प्रकट एवं स्वतन्त्र रखना पड़ता है ताकि जो मन को अगोचर है और जिसकी प्रत्येक क्षण प्रतीक्षा है उसका मेरे जीवन में पर्याप्त स्थान बना रहे। मेरे अन्दर प्रबल मानवीय सहानुभूति है फिर भी मैं दूसरों से ऐसा सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहता जो मेरी जीवन धारा की गति घटा दे।

···मैं स्वभाव से मिलनसार हूँ। मित्रों के साथ की बैठक के सुख और उपयोगिता के स्वाद को लेने की मेरी तीव्र इच्छा होती है, किन्तु मैं अपने आपको दे देने के लिये स्वतन्त्र नहीं हूँ।

···

मानव आत्मा ईश्वरीय पुष्प है। इसकी सर्वोत्तम गंध और बहार उस समय नहीं मिलती जब उसका रस निकालने के लिये, उसे कुछ उत्सुक हथेलियों में बन्द कर दिया जाता है। उसकी बहार तो वायु एवं प्रकाश की बृहत् स्वतन्त्रता में अकेले छोड़ देने में ही प्राप्य है।

●

कलकत्ता, २९ जनवरी'१५

···हमें बलात् अपने को अत्यधिक सचेत नहीं बनाना चाहिये—यहाँ तक कि ईश्वर के प्रति भी नहीं।

●

कलकत्ता, २१ जनवरी'१५

मेरे सुनने में आया है कि तुम सचमुच बीमार हो। इससे काम नहीं चलेगा, कलकत्ते चले आओ।...मैं बोलपुर जाने का साहस नहीं कर सकता। मैं थकान की इतनी बड़ी गहराई में पहुँच गया हूँ कि मेरे स्वार्थी एकान्त ने उसको भी एक शान दे दी है। सारे उत्तरदायित्व को छोड़ कर भाग आने में मुझे तनिक भी लज्जा नहीं मालूम होती। मैं निपट अकेला रहना चाहता हूँ।

●

शिलाईदा, १ फरवरी'१५

मैं कुछ समय से गहरी उदासी और थकान से पीड़ित हूँ, परन्तु मैं पुनः मन और काया से स्वस्थ हूँ और यदि आलोचकगण मुझे न छेड़ें तो मैं एक दूसरी शताब्दी तक जीवित रहने को तैयार हूँ।...मुझे अपने को आलोचकों से बहुत अधिक ऊँचा नहीं समझना चाहिये। मैं मंच पर अपना आसन नहीं चाहता। मुझे दर्शकों के साथ उन्हीं के स्तर के आसन पर बैठने दो और उन्हीं की तरह ग्रहण करने का प्रयत्न भी करने दो। वे जब मेरी वस्तुओं की सराहना नहीं करते तो उनकी निराशा की स्वाभाविक भावना को जानने का मैं इच्छुक हूँ।

●

शिलाईदा, २ फरवरी'१५

…जीवन के रोगों की चिकित्सा, जीवन की आन्तरिक गहराइयों में छिपी है और उस गहराई तक पहुँचना तभी सम्भव है, जब हम अकेले रहते हैं। इस अकेलेपन का भी अपना एक संसार है जो आश्चर्य भरा है और ऐसे स्रोतों से परिपूर्ण है जिनकी कल्पना भी नहीं की जाती।

●

शान्तिनिकेतन ३० जून'१५

…मुझ पर घूमने की धुन छाई हुई है, किन्तु स्वतन्त्रता के अभाव के कारण मेरे लिये यह भावना कष्टप्रद हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि वे डेरे अपने स्थान पर रहने के बजाय मेरी कमर पर चढ़े हैं।

सम्भवतः मेरा जीवन उस स्थिति में है जबकि और कुछ कलियाँ फूटने को और बीज बिखरने को हैं।…वर्षों तक परोपकारी योजनाएँ बनाने के बाद भी, मेरा जीवन उत्तर-दायित्वहीन खुले बंजर के समान अकट हो रहा है—यहाँ सूर्य उदय होगा, अस्त होगा, वन प्रसून खिलेंगे किन्तु समितियों की बैठकें नहीं होंगी।

●

कलकत्ता, १७, जुलाई'१५

मनुष्य अमर है, इसलिये उसे अनन्त बार मरना चाहिये। जीवन एक सृजनात्मक विचार है, वह अपने आपको केवल परिवर्तित होते हुये रूपों में ही प्राप्त कर सकता है। … आकार तो मृत पदार्थ होता है।

●

कलकत्ता, ११ जूलाई '१५

संसार के लोगों में आज जो पीड़ा तुम अनुभव कर रहे हो, विशेषतया: बलवान जातियों द्वारा त्रस्त दुर्बल जातियों को कष्ट, उसका अनुमान मैं सहज ही कर सकता हूँ। मानवीय अनीतियाँ क्षमणीय नहीं, भयंकर हैं। जिनके हाथों में शक्ति है वे भूल जाते हैं कि उन्हें अपनी शक्ति के ही लिये न्यायानुरूप होना है। जब दीन-दुर्बल प्राणियों की ईश्वर तक प्रार्थना पहुँचती है तो जिनके हाथ में शक्ति होती है उन्हीं के लिये संकटमय होती है।...भारत में जब ऊँची श्रेणी के मनुष्य छोटी श्रेणी पर शासन करते थे तो स्वयं उन्होंने अपने लिये बेड़ियाँ तैयार कर लीं। योरप भी ब्राह्मण भारत का अनुकरण बहुत अंश में कर रहा है।...योरप अपने आपको धोखा दे रहा है...यूरप धीरे-धीरे, अज्ञात रूप से अपने निजी आदर्शों में विश्वास खो रहा है और अपने नैतिक आधार को कमजोर बना रहा है।...प्रत्येक जाति का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह बलिष्ठ बने ताकि संसार की शक्ति के संतुलन को सम रखने में सहायक हो सके।

●

शिलाइदा, १६ जुलाई '१५

मैं अपने स्वप्नों को विस्तृत कर, हरे, सुनहले और नीले रंग के तैराने में ठीक उसी तरह संलग्न हूँ जिस प्रकार बच्चे अपनी कागज की नाव के लिये संलग्न होते हैं।....हमारे सारे भुगतान पीड़ा से होते हैं नहीं तो जीवन और सारा संसार धूल के समान सस्ता हो जाय।

●

शिलाईदा, २३ जुलाई '१५

मैं अपने कांस्तकारों के बीच वर्षों बाद आया हूँ।......
जब मैं पहली बार अपने इन्हीं आदमियों के बीच यहाँ रहा था, तो वह मेरे जीवन की महत्वपूर्ण घटना थी। मैं जीवन की वास्तविकता के सम्पर्क में इसी प्रकार आया क्योंकि इन्हीं लोगों में मनुष्यत्व अपने नग्न रूप में दृष्टिगत होता है। मनुष्य का ध्यान दूसरी ओर जब नहीं जाता तब वस्तुतः जान पाता है कि विश्व-व्यापी मानव में और साधारण मानव में बहुत कुछ साम्य है, फिर भी मनुष्य के लिये यह सब भूल जाने की बहुत सम्भावना ठीक उसी तरह है जैसे मनुष्य उस पृथ्वी का कभी विचार भी नहीं करता जिसपर वह नित्य चला करता है। किन्तु ऐसे ही लोगों से मिलकर अधिकांश मानव जंगत बना है, जो साम्यताओं को जीवित रखता है तथा अपने ही भार को सहन भी करता है। ये केवल जीने मात्र से संतुष्ट हैं.....। सहस्रों एकड़ भूमि जोती जाती है मात्र इसलिये कि एक एकड़ जमीन पर एक विश्वविद्यालय स्थायित्व पा सके। इतने पर भी ये व्यक्ति (गांवों में मेहनत करने वाले) अपमानित होते हैं और केवल इसलिये, यद्यपि उनकी आवश्यकता है, कि उनकी स्थिति उस स्थान पर उन्हें ले आई है वे केवल अपनी गरज मात्र जीने तक सीमित रखते हैं। ये अपनी जगह इसलिये हैं कि वे विवश हैं।

"""मैं स्वीकार करता हूँ कि जब मैं शान्तिनिकेतन में था मैंने इनपर ध्यान नहीं दिया। अब उनके साथ फिर होने में मुझे प्रसन्नता है कि मैं उनके बारे में और अधिक यत्नपूर्वक ध्यानमग्न हो जाऊँ। यह चिन्ता की बात है कि मेरा आश्रम का जीवन अन्ततः मुझे एक अध्यापक बना रहा था जो मेरे लिये अस्वाभाविक होने के कारण बहुत ही असन्तोषप्रद है; किन्तु व्यक्ति को वास्तविक मनुष्य बनने के लिये किसी का सहायक ही होना चाहिये क्योंकि तभी हम दूसरे मानव-बन्धुओं के जीवन के साथ अपने को मिलाते हैं, मात्र विचारों को ही नहीं।

●

कलकत्ता, २६ जुलाई '१५

""""अनुभूति की लहर तो आनन्द की पूर्णता से आती है, किन्तु उसका मार्ग पीड़ा से होकर आता है।"""" यदि कुरूपता पूरी तरह व्यापती होती तो तुमको क्रूरता प्रगट न हुई होती।""""सृष्टि में दुःख पर उल्लास विजय पाता रहा है नहीं तो (किसी के) कष्ट के लिये हमारी सहानुभूति निरर्थक होती।

●

शान्तिनिकेतन, ७ अगस्त '१५

""""सृष्टि को व्यक्त करने वाले अंक 'एक' नहीं, 'दो' हैं। सभी चीजें दो विरोधात्मक शक्तियों के संतुलन में स्थित हैं।

युद्ध और शान्ति के सिद्धान्त दोनों ही का सत्य में समावेश हैं। वे विरोधात्मक हैं। वे अंगुली और वीणा के तारों की भाँति एक दूसरे पर चोट करते दिखाई देते हैं, किन्तु यह विरोध ही संगीत उत्पन्न करता है। जहाँ केवल एक की बहुलता होती है वहीं मौन का वंध्यापन होता है। हमारी समस्या केवल यह नहीं है कि युद्ध हो अथवा शान्ति, वरन् यह कि हम उनमें सामंजस्य किस भाँति पूर्णरूप से स्थापित कर सकते हैं

·····''जब प्रेम और शक्ति दोनों बराबर नहीं चल पाते तो प्रेम मात्र दुर्बलता है और बल पाशविकता। शान्ति अकेले होने पर मृत्यु बन जाती है और युद्ध राक्षस बन जाता है, जब कि वह अपने बराबर चलने वाले का का संहार कर डालता है।

●

शान्तिनिकेतन, २३ सितम्बर '१५

मैं संसार का सारा अनुनय और विनय, सारे नैतिक एवं सामाजिक शिष्टाचार को कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व के लिये दृढ़ता पूर्वक 'नहीं' कहना चाहता हूँ। परन्तु मुझे मेरे इस विरोध के होते हुये भी डर है कि कुछ परिवर्तन के साथ मुझे अपना जीवन संन्यासी की भाँति ही शेष करना होगा।

●

श्रीनगर, काश्मीर, १२ अक्टूबर '१५

जब मैं प्रातःकाल नाव में बाहर आकर, उषा-रश्मियों से शोभित गिरि शृंगों के भव्य ऐश्वर्य के समक्ष बिराजता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि मैं शाश्वत हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ और मेरा सच्चा स्वरूप रक्त और माँस का नहीं आनन्द का है।......

मुक्ति की दिशा में पहली अवस्था शान्तम्—अर्थात् सच्ची शान्ति है जो अपने को वश में करने पर मिलती है। दूसरी अवस्था शिवम्—वास्तविक कल्याण है जो अपने को वश में करने के उपरान्त आत्मा की गति है और फिर है अद्वैतम, प्रेम, अर्थात् सबके साथ व ईश्वर के साथ एकाकार होना।

●

शिलाईदा, ३ फरवरी '१६

.....नगरों में जीवन इतना घिरा हुआ होता है कि मनुष्य अपने सच्चे दृष्टिकोण को खो बैठता है। कुछ समय बाद मैं प्रत्येक वस्तु से ऊब जाता हूँ, मात्र इसलिये कि अपना आन्तरिक सत्य विस्मृत हो जाता है। हमारा प्रेमी हमारे अस्तित्व के अन्तरंग में हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। जब तक हम समय-समय पर उसके पास नहीं आते भौतिक पदार्थों का अत्याचार असह्य हो जाता है। हमको बोध होना चाहिये कि हमारा सबसे बड़ा भंडार हमारे ही अन्दर छिपा हुआ है।...

●

शान्तिनिकेतन, ६ जुलाई' १७

......एक समय ऐसा था जब मेरा जीवन इस विश्व में अधाधुंध खर्चीलेपन से उमड़ रहा था। यह उस समय से पहले की बात है जब मेरे यौवन के उपवन में सार्थकता प्रचुरता से आई और अस्तित्व की दिगम्बर-सुषमा को फैशन भरी काट छाँट के साथ एक सुन्दर आवरण पहना गयी।

●

कलकत्ता, ६ मार्च '१८

मुझे अभी-अभी थाउजी का पत्र मिला है, जिसमें केवल बृटिश भारतीय नागरिकों को बृटिश बन्दरगाहों पर मिलने वाली परेशानी, छेड़खानी और अपमान की शिकायत है। इसके माने यह हुये कि जिस संस्कार के आधीन वे रहते हैं उससे वे लज्जा अनुभव करते हैं। ऐसा द्वेशपूर्ण व्यवहार मेरे देश वासियों पर बहुत गहरी छाप डाल रहा है और इतिहास का नैतिक पक्ष देखने वाला, मानवता के प्रति निरन्तर अशोभनीय व्यवहार से दृष्टि नहीं बचा सकता।

●

शान्तिनिकेतन, १० मार्च '८८

प्रत्येक व्यक्ति के लिये केवल एक ही मार्ग नहीं हो सकता क्योंकि हम सभी में अपने स्वभाव और प्रकृति में बहुत भिन्नता है। फिर भी एक विशेष स्थल पर सभी महा-पुरुष एकमत हैं और वह है आध्यात्मिक स्वतन्त्रता पाने के लिये अपने निजी व्यक्तित्व को (अपने अहम को) भुला देने का। बुद्ध और ईसा दोनों ने कहा है कि आत्म-त्याग नकारात्मक नहीं है, उसका प्रेम निश्चित सन्मामय पक्ष है।

...मनुष्य-जगत को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—प्रथम तो वे जिनका प्रेम व्यक्तियों से होता है और दूसरे वे जिनका प्रेम विचारों से होता है। सामान्यरूप से स्त्रियाँ प्रथम में आती हैं और पुरुष दूसरे वर्ग में। भारत में यही स्वीकार किया गया है और इसी कारण हमारे गुरुओं ने स्त्री और पुरुषों के लिये दो भिन्न मार्गों का अवलम्बन करना बताया है।...

अपने आश्रम के चारों ओर आदिवासी संथाल स्त्रियों पर ध्यान दो।...उनके ढाँचे और चाल ढाल में एक सलोना सौन्दर्य है, क्योंकि जीवन के काम-काज से उनकी लय हमेशा मिलाई जा रही है। वह विशेष बात जिसकी प्रशंसा से मैं तृप्त नहीं होता वह है उनके शरीर के अवयवों की वह असाधारण स्वच्छता जो निरन्तर धूल के सम्पर्क से भी मलिन नहीं होती। भद्र महिलायें अपने ऊपरी शरीर को साबुन और इत्र फुलेलों के साथ केवल एक ऊपरी चमक दे पाती हैं, किन्तु वह स्वच्छता जो शरीर की अपनी धारा की गतिशीलता से उत्पन्न होती है, जो शारीरिक स्वास्थ्य की पूर्णता से आती है, इन भद्र महिलाओं में कभी भी नहीं हो सकती।

शान्तिनिकेतन, ७ अक्टूबर' १८

दुर्भाग्यवश कवि से असीमित समय तक एक ही रस से स्वाद लेने की आशा नहीं की जा सकती। ज्योंहि कोई नयी सूझ उसके हृदयपटल पर छाप डालती है, वह फिर प्रत्येक भले काम के लिये बेकार हो जाता है। वह तो मौलिक अद्भुत होता है और आवारापन उसके रक्त में प्रवाहित है। मुझे अभी भी उत्तरदायित्वहीन आवारापन का स्वर सुनाई पड़ रहा है—(अर्थात्) नितान्त प्रमाद के लिये एक प्रबल इच्छा।

●

शान्तिनिकेतन, ११ दिसम्बर '१६

हमको अनौचित्य के विरुद्ध लड़ना है और सत्य के लिये कष्ट सहन करना है, किन्तु हमको अपने पड़ोसियों से केवल इसीलिये कि हमारे अलग-अलग नाम हैं, तुच्छ ईर्ष्या और लड़ाई नहीं करनी चाहिये।...बुद्ध के उस उपदेश को मैं अब अधिक से अधिक समझ पा रहा हूँ कि हमारे शोक का मूल कारण अहम् भाव की चेतनता है।

आत्मविकास कष्ट और तपस्या के मार्ग में निहित है। पीड़ा की कुन्जी द्वारा आनन्द-द्वार के ताले को हमें खोलना है। हमारा हृदय एक श्रोत की तरह है, जब तक उसकी धार अहम् की संकीर्ण नालियों द्वारा बहाई जाती है वह भय, शोक और शंकाओं से भरी रहती है।...किन्तु जब वह सर्वव्यापी होकर खुले वक्षस्थल पर बहती है तब वह प्रकाश से चमक उठती है और स्वतन्त्रता के उन्माद में संगीतमयी हो जाती है।

[पत्रावली २५

अरबसागर, २४ मई '२०

आज हम स्वेज पहुँच जायेंगे। ठंक आम शुरू हो गयी है और मुझे ऐसा लगता है कि हम दुनिया के एक विदेशी भाग में सचमुच पहुँच गये हैं और जहाँ हमारे अधिपतियों का नहीं अन्य का राज है। यहाँ के मनुष्य चाहते हैं कि हम उनके लिये लड़ाई लड़ें और उन्हें अपना कच्चा माल भी भेजें, किन्तु दूसरी ओर ये ही हमें द्वार के बाहर खड़ा रखना चाहते हैं। जगह-जगह यह सूचना अंकित है—"एशियाई व्यक्तियों द्वारा सीमोल्लंघन करने पर मुकदमा चलाया जायगा।" मैं जब इस पर विचार करता हूँ तो मेरे विचार कम्पित हो उठते हैं और मुझे शान्तिनिकेतन के बंगले के धूप भरे कोने में पहुँचने के लिये घर की याद आने लगती है।

●

लन्दन, १७ जून '२०

यहाँ चीनी, मक्खन, समय और ऐसे शान्त स्थान का अभाव है जहाँ मैं अपने विचार एकत्रित कर अपने को पहचान सकूँ। मुझसे लम्बे पत्रों की क्या, वस्तुत: किसी वस्तु की आशा मत करो। सामाजिक मिलन के कार्यक्रमों का मेरे ऊपर तूफान है और यह एक ऐसी वस्तु है जिसपर 'पश्चिमी हवाओं' की भाँति विचारपूर्ण कविता लिखी जा सकती है।

अपनी प्रेयसि के कपोलों पर मात्र एक तिल के लिये कवि 'हाफिज', समरकन्द और बोखारा की सम्पत्ति निछावर करने को तत्पर था, मैं शान्तिनिकेतन के अपने कोने के बदले में सारा लन्दन दे सकता हूँ। किन्तु लन्दन पर मेरा अधिकार नहीं और न समरकन्द और बोखारा पर उस ईरानी कवि का था।

लन्दन, ८ जुलाई '२०

मुझे आशा है कि पिअर्सन नियम से तुम्हें ताजे समाचारों से अवगत कराते रहते हैं। जैसा तुम स्वयं समझ सकते हो कि उनसे मुझे बहुत सहायता मिली है और मैं यह भी देख रहा हूँ कि कवि की देखभाल करने के भारी उत्तरदायित्व के लिये वे आश्चर्यजनक रूप से उपयुक्त हैं। वे स्वयं स्वास्थ्य के अवतार प्रतीत होते हैं, और सारांश यह कि उनके स्वप्न बहुत ही मनोरंजक हैं। कल रात स्वप्न में तरबूज के बराबर बड़ी-बड़ी रसभरियाँ वे खरीदते रहे। यह उनके सपनों की महत्वपूर्ण साधों को प्रमाणित करता है।

❁

लन्दन, १२ जुलाई '२०

जब मैं क्लान्त होता हूँ और मुझे लौटने की इच्छा प्रबल होने लगती है तो यह सोच कर मुझे शक्ति मिलती है कि मेरे विचारों के पक्षियों ने इन समुद्र तटों पर अपना नीड़ बना लिया है और इन अत्यन्त व्यस्त पुरुषों ने सच्चे प्रेम और विस्मय के साथ सुदूर पूर्व के स्वर को सुना है।...

यह असंभव नहीं है कि कालान्तर में उन्हें (पश्चिम वालों को) मेरे विचारों की भविष्य में कोई आवश्यकता न रहे और न मेरे व्यक्तित्व में ही कोई आकर्षण शेष रहे, किन्तु इसका क्या महत्व ? पेड़ पत्तियों को छोड़ देता है, किन्तु यह सच ही रहता है कि जब वे जीवित थीं तो उस वृक्ष के हृदय तक वे ही धूप पहुँचाती थीं और उन्हीं का स्वर (वृक्षों का नहीं) जंगल का स्वर था।

लन्दन, २२ जुलाई '२०

इस देश की शासक श्रेणी की भारत के प्रति मनोवृत्ति को पार्लियामेंट की दोनों सभाओं में डायर विवादों का परिणाम दुःखद रूप से प्रगट कर देता है। इससे प्रत्यक्ष है कि उनकी सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा हमारे विरुद्ध कितना ही भयंकर अत्याचार, उनके हृदय में निन्दा और घृणा की भावना नहीं जगा सकता। मैं केवल यही आशा करता हूँ कि हमारे देशवासी इससे हतोत्साह नहीं होंगे और अदम्य उत्साह और निश्चय की भावना के साथ अपने देश की सेवा में अपनी सारी शक्ति लगा देंगे। सभी बड़े वरदान अंतर्निहित अमर ज्योति से आते हैं।

●

पेरिस, १३ अगस्त '२०

मैं पेरिस आ गया हूँ, किन्तु यहाँ ठहरने के लिये नहीं, यह निश्चय करने के लिये आया हूँ कि अब कहाँ जाऊँ। जिन व्यक्तियों से मैं मिलना चाहता था, उनसे मिलने की कोई सम्भावना नहीं है, पेरिस खाली है। हमारा इंगलैंड का प्रवास व्यर्थ गया। पंजाब में डायरवाद पर तुम्हारी लोकसभा के विवाद और भारत के प्रति घृणा तथा हृदयहीनता की कुरूप भावनाओं के चिह्नों ने मुझे अत्यधिक दुःख पहुँचाया है और इसी कारण मैंने एक हलकेपन को प्राप्त करने की भावना के साथ इंगलैंड छोड़ दिया।

●

पेरिस से कुछ दूर २०, अगस्त १९२०

हम फ्रांस में एक सुखद देश में एक सुन्दर स्थान में हैं और ऐसे लोगों से भेंट हो रही है जो विशेषतः मनुष्य हैं। मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ कि मानव-जीवन का चरम सत्य चिन्तन के क्षेत्र में वहाँ है जहाँ वह धूल (कायिक) आकर्षण से मुक्त है और वह अपने आपको मात्र आत्मा अनुभव करता है। भारत में हम छोटे-छोटे स्वार्थों के पिंजड़ों में बन्द रहते हैं, हमें विश्वास ही नहीं होता कि हमारे भी पंख हैं, क्योंकि हमने अपना आकाश खो दिया है। हम चें चें करते हैं, फुदकते हैं और छोटे से क्षेत्र में एक दूसरे पर चोंच से चोट करते रहते हैं। हमारी सबसे बड़ी समस्या यह भी है कि बाहरी परिस्थितियों के अनुपयुक्त होते हुये भी हम अपनी आत्मा की मुक्ति कैसे प्राप्त करें।

●

आर्डेनीज, २१ अगस्त '२०

हम यहाँ फ्रांस के एक सुन्दरतम प्रदेश में हैं। लेकिन जब हमने अपने सन्दूक जिनमें पहनने के सारे कपड़े थे खो दिये हैं, तो इस प्राकृतिक सौन्दर्य का क्या उपयोग। इस समय मेरे लिये संसार में सबसे महत्वपूर्ण घटना यह नहीं है कि पोलैंड, आयर्लेन्ड या मैसोपोटामिया में क्या हो रहा है, किन्तु यह कि हमारे दल के सभी सदस्यों के सारे ट्रंक पेरिस से यहाँ तक आने की यात्रा में मालगाड़ी के डिब्बे से गायब हो गये हैं।

●

पैरिस, ७ सितम्बर '२०

तुम्हारे पत्र सदैव मेरे मन के चारों ओर शान्तिनिकेतन का वातावरण अपने वास्तविक रूप में ध्वनि और हलचल लाते हैं और बच्चों के प्रति मेरा स्नेहपूर्ण मन, देश-विदेश में भ्रमण करने वाले पक्षी के समान आश्रम में अपने प्यारे घोंसलों की ओर समुद्र पार कर लौटना चाहता है। तुम्हारे पत्र मेरे लिये उपहार हैं और उनसे उऋण होने की मुझ में शक्ति नहीं है...क्रूर अन्याय के अपमान का डंक खाकर हम यूरोप से नाता तोड़ लेते हैं, ऐसा करके हम अपना ही अपमान करते हैं। हमारे अन्दर वह शान होनी चाहिये कि हम न तो झगड़ा करें और न प्रत्युत्तर दें। क्षुद्रता का बदला क्षुद्रता से न दें।...हम अपने विचार और चरित्र की सारी पूँजी को देश की सेवा के लिये, कर्त्तव्य की रचनात्मक दिशा की ओर समर्पित करें।...अपना देश अपने बच्चों को पुकार रहा है कि वे अपनी स्वाभाविक जीवन की उन बाधाओं को दूर करने में सहायक हों जो सैकड़ों वर्षों से आत्मानुभूति में हमारे लिये रोके अटकाती रही हैं।...

अपने देश का यह भयंकर दुर्भाग्य है कि शक्ति (नैतिक उमंग) की ऐसी अमूल्य निधि राजनीति के दुर्बल, संकुचित पात्र में रख दी गई है और उसे प्रतिकारवश क्रोध में अनन्त लहरों को पार करने की छूट है, जबकि हमारा उद्देश्य आत्माग्नि के द्वारा मृत का पुनरुत्थान करना है।

पेरिस, १२ सितम्बर '२०

कुछ समय पहले मैं मोटरकार में रहाइन्स और फ्रांस के अन्य टूटे भागों में ले जाया गया। सारा दृश्य अत्यन्त दुःख देने वाला था। इसको भूतकाल की वस्तु समझने में बड़े प्रयत्न की आवश्यकता होगी और अधिक समय लगेगा।...

है तो यह कठिन, किन्तु मुक्ति का मार्ग यही है कि केवल सृजनात्मक आदर्श ही संहार के कार्यों को पूर्णरूपेण पार कर सकता है। यही आध्यात्मिक आदर्श है, यही प्रेम है, यही क्षमाशीलता है। ईश्वर निरन्तर ही उसका उपयोग करता है और इस प्रकार सृष्टि को सदा ही मधुर बनाये रखता है।

●

पेरिस, १३ सितम्बर '२०

मैं देखता हूँ कि मेरे देश-वासियों में असहयोग के प्रति प्रचंड उत्तेजना है।...महात्मा गांधी को इसमें सच्चा नेता होने दो। निश्चित सत्तामयता के लिये उनको पुकारने दो, बलिदान में सत्कार माँगने दो इसका अन्त प्रेम और सृजन में है। यदि देशवासियों के साथ प्रेम और सेवा में सहयोग देने के लिये वे (गांधी जी) मुझे आदेश दें तो मैं उनके चरणों में बैठने को और उनकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ, किन्तु मैं अपने पुरुषत्व को व क्रोधाग्नि को प्रस्फुटित करने और उसे एक घर से दूसरे घर तक फैलाते हुये नष्ट करने में सहमत नहीं हूँ। यह बात नहीं है कि मातृभूमि पर जो अपमान और अन्याय लादा गया है उससे मैं अपने हृदय में क्रोध अनुभव नहीं करता, किन्तु मेरा यह क्रोध प्रेमाग्नि में परिवर्तित किया जाना चाहिये जिससे पूजा-दीप जलाया जाय और उसे अपने देश के द्वारा, अपने ईश्वर को संमर्पित कर दिया जाय।

एपटचर्च, ३ अक्टूबर '२०

हालैंड में मैंने एक पखवारा व्यतीत किया है। यह पखवारा अपने उपहारों के नाते, मेरे लिये अत्यन्त सहिष्णु रहा। एक बात के लिये तुम निश्चिन्त हो सकते हो कि इस छोटे से देश में और शान्ति-निकेतन में हार्दिक सम्बन्ध कायम हो गया है और अब यह हम पर निर्भर है कि हम उसे विस्तृत करें और आध्यात्मिक निधि के विनिमय के लिये उसका उपयोग करें।...पहले कभी की अपेक्षा मैं आज अधिक अच्छी तरह जानता हूँ कि शान्ति-निकेतन संसार का है और हमको इस बड़ी सच्चाई के उपयुक्त होना है।... शान्तिनिकेतन को अपने देश की धूल-भरी राजनीति के बवंडर में पड़ने से बचाने की आवश्यकता है।

लन्दन, १८ अक्टूबर '२०

शान्तिनिकेतन तो शाश्वत रूप से मानवता की अभिव्यक्ति करने के लिये है—'असतो मा सद्‌गमय' यह प्रार्थना जो उस समय सब देशों में जब देशों के भौगोलिक नाम बदल जायेंगे, और भी धीरे-धीरे स्पष्ट ध्वनित होती जायगी।...

मुझे अपने जीवन में सर्वोत्तम पुरस्कार मिला है—अपने अन्दर सत्य के स्वतः निस्वार्थ प्रकटीकरण से, न कि किसी परिणाम के लिये किये गये उद्योग से, चाहे उसका कितना ही बड़ा नाम क्यों न हो।

न्यूयार्क, २८ अक्टूबर '२०

...हमारी निष्ठा किसी सीमित भौगोलिक प्रदेश से नहीं होनी चाहिये। वह तो उस सद्विचार की राष्ट्रीयता से होनी चाहिये, जिसमें विभिन्न राष्ट्रों के व्यक्ति जन्म लेते हैं और जो मानवता के महत् मन्दिर की ओर अपने बलिदान के उपहार को ले जाते हैं।

न्यूयार्क, ४ नवम्बर '२०

मैं तुम्हें एक बात बताने को बहुत उत्सुक हूँ। शान्तिनिकेतन को राजनीति की हलचल से दूर रखना। मैं जानता हूँ कि राजनैतिक समस्या भारत में सघन होती जा रही है और उसको हस्तक्षेप से रोक पाना कठिन है फिर भी हमको कभी भूलना नहीं चाहिये कि हमारा उद्देश्य राजनैतिक नहीं है। जहाँ मेरी राजनीति है मैं वहाँ शान्तिनिकेतन का नहीं हूँ।...

न्यूयार्क, २५ नवम्बर '२०

...इस नये युग की समस्या है—संसार की आमूल पुनर्निर्माण में सहायता। हमको इस महान् कार्य को स्वीकार कर लेना चाहिये। शान्तिनिकेतन संसार के सभी भागों के कार्यकर्ताओं के लिये स्थान बनायेगा।...हमको 'मनुष्यमात्र के लिये, जो इस युग का अतिथि है स्थान बनाना है और राष्ट्र को उसके मार्ग में बाधक नहीं बनने देना है।

न्यूयार्क, २० नवम्बर '२०

भूतकाल मनुष्य के लिये रहा है और भविष्य भी 'मानव' के लिये है। पर मनुष्य आज भी इस दुनिया के अधिपत्य के लिये तैयार नहीं है। कलह और कोलाहल और कुछ भी सुनने नहीं देता। पद-दलित धरती से उठती हुई धूल ने सारे वायु-मण्डल को घेर लिया है। ऐसे संघर्ष के बीचोबीच खड़े होकर हमको एक नव-युग के लिये आसन बनाना है जो सभी मानव-जातियों के तीर्थ प्रयाग है।

न्यूयार्क, १३ दिसम्बर '२०

इस देश में मैं विशालता के किले की कालकोठरी में रह रहा हूँ। मेरा हृदय क्षुधित है। निरन्तर मैं शान्तिनिकेतन का स्वप्न देखता हूँ, शान्तिनिकेतन जो सरलता और निस्सीम स्वतंत्रता के वातावरण में कुसुम सदृश विकसित है।...पृथ्वी के विशालकाय रेंगने वाले प्रारम्भिक जीव अपनी लम्बी-चौड़ी दुमों पर अभिमान करते थे, जो उनकी रक्षा विनाश से नहीं कर सकती थीं। मैं इस इस अस्तित्वहीनता के परित्याग के लिये और शान्तिनिकेतन के प्रत्यागमन के लिये पहले स्टीमर द्वारा आकर अपने जीवन और सम्पूर्ण प्रेम से सेवायुक्त होने को लालायित हूँ।

सच्चा ज्ञान वहीं है, जहाँ परिणाम के लिये लोभ को मथा जा सके और जहाँ मात्र सत्य के प्रकटीकरण के लिये सम्बन्ध हो। इस सच्चे ज्ञान का आविर्भाव भारत में हुआ है, किन्तु वह उस कोलाहल की बाढ़ में डूब जाने के प्रत्यक्ष संकट में है और जिसको अभिवृद्ध समृद्धिशाली पश्चिम की सफलता के पुजारी कर रहे हैं।

न्यूयार्क, १७ दिसम्बर '२०

उपनिषद् में यह कहा गया है—"महानता में आनन्द है।" आकांक्षा बड़प्पन की ओर संकेत करती है, महानता उसे सम्बोधित करती है और हमारा मार्ग लक्ष्य के बीच से खो जाता है। जब मैं बुद्ध के चित्र को देखता हूँ तो आन्तरिक पूर्णता की शान्ति को पुकारता हूँ। मेरे मन का विक्षेप ज्यों-ज्यों मेरे चारों ओर की वस्तुओं की निरर्थकता से होता है मेरी इच्छा दुखद रूप से तीव्र होती जाती है।

●

न्यूयार्क, १६ दिसम्बर '२०

अपनी पौराणिक कथाओं में हमने प्रायः सुना है—मनुष्य ने राक्षसों के आधिपत्य से स्वर्ग की रक्षा के लिये देवताओं का पक्ष लिया, किन्तु अपने इतिहास में हम उन मनुष्यों को बहुधा देखते हैं जिन्होंने सुरों को हराने के लिये असुरों से संधि कर ली है। चरम शक्ति और विशालकाय तोपें और जहाज दैत्यों के कारखानों से निकलते हैं।

भारत में हम लोगों का विश्वास नैतिक शक्ति में होने दो और उसे अपना सब कुछ उसी पर निछावर करने को प्रस्तुत होने दो। यह सिद्ध करने के लिये हमें शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये कि सृष्टि में मानव सब से बड़ी भूल नहीं हुई है।

●

न्यूयार्क २० दिसम्बर १६४०

वर्तमान युग में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पूर्व और पश्चिम का मिलन हुआ है। जब तक यह मात्र तथ्य रहेगा, निरन्तर संघर्ष होंगे, यहाँ तक कि वह आत्मा पर भी आघात करेगा। निष्ठामयी व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे इस तथ्य को सत्य में परिणत कर दें। जो व्यवहार कुशल हैं वे नकारात्मक सिर हिला कर कहेंगे कि यह सम्भव नहीं है। पूर्व व पश्चिम में एक मौलिक भेद है जो केवल भौतिक शक्ति ही से निर्णित होगी। किन्तु भौतिक शक्ति सृजनात्मक नहीं है। वह चाहे जैसी भी संस्थाओं और कानूनों को जन्म दे किन्तु आध्यात्मिक मानवता को कभी सन्तुष्ट नहीं करेगी। हम में राममोहन राय पहले महान पुरुष थे जिनका दृढ़ विश्वास और विशाल मानसचिन्तन अपने हृदय में पूर्व और पश्चिम के आत्मिक ऐक्य का था। यद्यपि व्यवहार की दृष्टि से मेरे देश वासियों द्वारा यह विचार अस्वीकृत है, फिर भी मैं उनका अनुकरण करता हूँ।...मनुष्य की क्या पुकार है इसे राजनितिज्ञ कभी नहीं सुनते। मुगल राजाओं के दरबारों में राजनितिज्ञ होते थे। उन्होंने अपने पीछे खण्डित अवशेषों के अतिरिक्त और कुछ नहीं छोड़ा, किन्तु कबीर और नानक ने ईश्वर के प्रेम के द्वारा मनुष्य में ऐक्य के प्रति अपना अमर विश्वास छोड़ा है।

न्यूयार्क, २१ दिसम्बर '२०

मुझे याद है जब मैं छोटा था एक अन्धा भिखारी एक लड़के की सहायता से प्रतिदिन मेरे द्वार पर आता था। वह दुःखद दृश्य था। उस बूढ़े के अंधेपन ने उस लड़के की आजादी छीन ली थी। लड़का उदास दिखाई देता था और वह अपनी मुक्ति के लिये उत्सुक था।

हमारी असमर्थता एक बेड़ी है जिससे हम दूसरों को अपनी सीमा में बांधते हैं। ५९

●

न्यूयार्क, २२ दिसम्बर '२०

मेरे पास वह आये जो भला है न कि वह जो इच्छित है। हमको अपने भले के प्रति आसक्त नत करना है। ६०

●

न्यूयार्क से कुछ दूर २५ दिसम्बर १९३०

आज बड़ा दिन है। संयुक्तराष्ट्र के विभिन्न भागों से पैंतालिस अतिथि इस सराय में इकट्ठे हैं। किन्तु मानव-हृदय में बड़े दिन की भावना कहाँ है! स्त्री-पुरुष विशेष पकवानों से पेट भर रहे हैं और तीव्र अट्टहास कर रहे हैं। उनके अट्टहासमयी हृदयों में शाश्वत का किंचित स्पर्श नहीं है आनन्द की सहज प्रगाढ़ शान्ति नहीं है और न भक्ति की गहराई है। हमारे देश के धार्मिक उत्सवों से कितनी अधिक भिन्नता है! इन पाश्चात्य मनुष्यों ने धनोपार्जन किया है किन्तु जीवन के उद्देश्य का हनन किया है। यहाँ जीवन उस सरिता की भाँति है जिसने बालू और कंकड़ों का ढेर कर लिया है और स्वयं ही जल की अनवरत धार को रोक दिया है, ये पश्चिमी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति पर विश्वास करते हैं जो कई गुना बढ़ सकती है किन्तु उपलब्ध कुछ नहीं कर सकती।

मेरा हृदय हिमालय की झील की जंगली बतख के समान है जो सहारा के असीम मरुस्थल में अपने को खोई हुई अनुभव करती है। यहाँ एक घातक चमक से बालू चमकती है किन्तु आत्मा को प्राण देने वाले जल-स्रोत के अभाव में वह मुरझाती जाती है।

३८ पत्राजलि]

न्यूयार्क, ८ जनवरी' २०

क्षुद्र वस्तुयें निकट परिचय के बाद हमारे लिये अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँच जाती हैं। किन्तु सत्य जो महान् है उसे अपनी व्यापकता को और भी विस्तृत रूप में प्रकट करना चाहिये, विशेषकर तब जबकि वह (सत्य) हमारे निकट है। दुर्भाग्य से सत्य व्यक्त करने वाले शब्दों में वह सम्पूर्णता नहीं है जो स्वयं सत्य में हैं। इसी कारण शब्द के साथ ही साथ ध्यान और अभिरुचि के निरन्तर व्यवहार से वे निष्क्रयात्मक हो जाते हैं और अपनी छाया में हमारी श्रद्धा को ढक लेते हैं।...

यही कारण है कि वे पुरुष जो प्रकट रूप में धार्मिक दिखाई देते हैं बहुधा उनकी अपेक्षा जो खुले रूप धर्म की उपेक्षा करते हैं, अधिक अधार्मिक होते हैं। धर्म के उपदेशकों ने अपना यह व्यापार बना लिया है कि हर समय ईश्वर से व्यवहार करें।...

न्यूयार्क १५ जनवरी '२१

देशभक्ति के नाम पर हमारे देश में बहुधा मानवता के कुचलने या संकुचित करने की प्रक्रिया का समर्थन किया जाता है। अपनी प्रकृति को इस प्रकार से जानबूझ कर संकुचित करना मुझे एक अपराध मालूम होता है। वह उस जड़ता को पोषित करता है जो एक प्रकार का पाप है।

न्यूयार्क २२ जनवरी '२१

अभी मैं भीलिष से लौटकर आया हूँ। यह स्थान न्यूयार्क का ही छोटा भाग है और यहाँ पिछली रात मेरा स्वागत, भाषण, प्रीतिभोज एवं परिसंवाद हुआ था। वहाँ के लम्बे कार्यक्रम में, मैं अपने आपको उस फटे गुब्बारे की भाँति रीता अनुभव करता हूँ, जिसमें कोई हवा शेष नहीं बची।

●

न्यूयार्क, २ फरवरी १९२१

तुम्हारे पत्र बड़े सरल होते हैं, क्योंकि तुम उन छोटी-छोटी बातों में अपनी अभिरुचि प्रगट करते हो जिनकी अवहेलना प्रायः करदी जाती है। संसार नितान्त छोटी-छोटी चीज़ों से ही सुन्दर बना है। वे वस्तुएँ, इस महान जगत के बहुरंगे चित्र का निर्माण करती हैं। महत्वपूर्ण वस्तुएँ धूप की भाँति हैं जो एक महास्रोत से आती हैं। छोटी-छोटी वस्तुओं से ही हमारा वायुमंडल बना है। वे ही सूर्य की किरणों को बिखेरती हैं और वायुमंडल को रंगों में बाँटती हैं तथा सुकुमारता को कोमल रूप से बिखेरती हैं।

●

न्यूयार्क, ५ फरवरी '२१

पश्चिम की सभ्यता अनुवीक्षण-यंत्र के समान है। वह साधारण वस्तुओं को भी बहुत बड़ा बना देती है।·· पश्चिमी सभ्यता ऊँची ऐड़ी के जूते चाहती है, जिनकी एड़ियाँ उनसे भी अधिक बड़ी होती हैं।

इस देश में मुझे यह अनुभव करके कि यहाँ के लोग यह नहीं जानते कि वे वास्तविक रूप से प्रसन्न नहीं है, दुःख होता है। वे अभिमान में डूबे हैं। उनका अभिमान उस रेगिस्तान की भाँति है जो अपनी चमक पर गर्व करता है। सहारा का मरुस्थल बहुत बड़ा है, किन्तु मेरा मन उससे पीठ फेर लेता है। ६६

न्यूयार्क, ८ फरवरी '२१

'प्रवासी' में प्रकाशित एक आश्रमवासी का पत्र मैंने अभी-अभी पढ़ा है और उसने मुझे गहरी चोट पहुँचाई है। यह देश-प्रेम का सबसे ओछा पक्ष है। संकीर्ण मस्तिष्क में देश-प्रेम मानवता के महान आदर्शों से अपने को अपने को अलग कर लेता है। वर्तमान युग में सारा संसार इस आसुरी पूजा से पीड़ित है और मैं कह नहीं सकता फिर देश में ऐसी भयङ्कर और घृणास्पद, अपवित्र मतवाद के रीति रिवाजों से घिरा होने पर मैं कितना दुःखी हूँ। एशिया के विरुद्ध सभी जगह घृणा भरी हुई है जिसका आभास मिथ्या दोषारोपणों में मिलता है, जहाँ नीग्रो जीवित जला दिये जाते हैं। कभी कभी मात्र इसलिये कि उन्होंने कानून द्वारा मिले वोट के अधिकार का उपयोग किया। जर्मनों की निन्दा की जाती है। रूस की दशा का जान-बूझकर भ्रामक चित्रण किया जाता है। ये सामूहिक मनोवृत्ति की दलदल पर झूठी पपड़ी जमा कर राजनैतिक सभ्यता की ऊँची मीनारें निर्माण करने में मुख्यतः संलग्न हैं। उनका अस्तित्व घृणा ईर्ष्या, निन्दा और झूठ की निरन्तर भरमार पर निर्भर है।

टैक्साज हाउस्टन, २३ फरवरी '२१

कर्म के रथ-चक्र से बँधकर हम एक जन्म से दूसरे जन्म की ओर दौड़ते हैं। उसका एक आत्मा के लिये क्या महत्व होता है, यह मुझे पिछले कुछ दिनों में अनुभव करना पड़ा है। यह मेरा अत्याचारी कर्म ही है जो मुझे एक होटल से दूसरे होटल तक घसीट रहा है।...मैं सदा उस दिन का स्वप्न देख रहा हूँ जब मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा। होटल-जीवन की शृंखला से मुक्त होकर उत्तरायण में नितान्त शान्ति को पहुँच सकूँगा।

●

शिकागो २४ फरवरी, १९२१

वह मूर्ख जो अपनी अकर्मण्यता से सन्तुष्ट है और चाहे जो भी हो चिन्तामुक्त है, किन्तु वह जो संसार को बदल देना चाहता है, थोड़ा भी चैन नहीं पाता।

●

शिकागो २६ फरवरी '२१

तुम्हें विदित है कि मैंने कहीं लिखा है,—"ईश्वर मेरी प्रशंसा करता है जब मैं कोई भलाई करता हूँ, लेकिन जब मैं गाता हूँ ईश्वर मुझसे प्रेम करता है।" प्रशंसा पुरस्कार है, उसे काम करने वाले के काम के साथ मापा जा सकता है, किन्तु प्रेम सभी पुरस्कारों से ऊपर है, वह मापा नहीं जा सकता।

वही कवि जो अपने उद्देश्य के प्रति सच्चा है प्रेम की फसल काटता है किन्तु जो कवि भलाई के मार्ग में भटकता है वह केवल प्रशंसा से टाल दिया जाता है।

●

शिकागो, २ मार्च १९२१

पश्चिम का भौतिक शक्ति और समृद्धि में दृढ़ विश्वास है,...हम भारतवासियों को संसार को दिखाना है कि वह कौन-सा सत्य है जिसे निशस्त्रीकरण संभव ही नहीं वरन् उसको शक्ति में परिणत भी कर देना है।

यह दिन निश्चय ही आयेगा जब भावनाओं से युक्त कोमल मनुष्य वायुयानों के समूह से अविचलित रह कर यह सिद्ध कर देगा कि इस धरती पर रहने का अधिकार विनम्र को ही है।

स्वराज्य क्या है? वह माया है। उस अंधेरे की भाँति है जो लुप्त हो जायगा और शाश्वत ज्योति में उसकी कोई छाया शेष नहीं रहेगी। जो भी हो, पश्चिम से सीखी हुई बातों से हम अपने को धोखा दे सकते हैं। स्वराज्य हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा संघर्ष तो आध्यात्मिक है—वह तो मनुष्य मात्र के निमित्त है। हमें उन राष्ट्रीय अहंकार की संस्थाओं के जालों से जो अपने चारों ओर बुन लिये गये हैं मनुष्य को मनुष्य कहना है।

हम भूखे, चिथड़ों से ढके तुच्छ व्यक्ति ही मानव-मात्र के लिये स्वतंत्रता लायेंगे। हमारी भाषा में राष्ट्र के लिये कोई शब्द नहीं है और हम इस शब्द को जब दूसरे से ग्रहण करते हैं तो वह हमारे अनुरूप नहीं होता। हम तो ईश्वर से अपनी संधि करने को हैं। हमारी सफलता स्वयं विजय होगी—भगवानकी सृष्टि की विजय। मैंने पश्चिम को निकट से देखा है, मैं उन पापी क्रियाओं के लिये चिन्तित हूँ जिनमें वह स्वाद ले रहा है, अधिकाधिक फूलता जाता है, लाल पड़ता जाता है और विवेक शून्य होता जाता है।

शिकागो, ५ मार्च '१९२१

इधर मैं भारतवर्ष से अधिक से अधिक समाचार और समाचार-पत्रों की कतरन पा रहा हूँ। यह मेरे मन में दुखद संघर्ष उत्पन्न करती हैं ''असहयोग का विचार राजनैतिक सन्यासवाद है'' मुझे उस दिन की याद है जब बंगाल में स्वदेशी-आन्दोलन के समय अपने शिक्षा-भवन की पहली मंजिल में तरुण विद्यार्थियों का झुण्ड मुझसे मिलने आया। उन्होंने मुझसे कहा, यदि मैं उन्हें स्कूल व कालेज छोड़ने की अनुमति दूँ तो वे तुरन्त आज्ञा-पालन करेंगे। मैं ऐसा करने के विरुद्ध दृढ़ था। वे मातृ-भूमि के प्रति मेरे प्रेम की सचाई पर सन्देह करते हुये क्रुद्ध होकर लौट गये।

उन विद्यार्थियों को स्कूल छोड़ने का आदेश न देने का कारण यह था कि कोरे खोखलेपन का विद्रोह मुझे कभी नहीं सुहाता, चाहे उसका आधार अस्थाई ही क्यों न हो। मैं ऐसे काल्पनिक भाव से डर जाता हूँ जो सजीव वास्तविकता की अवहेलना करे।

मैं बार-बार कहता हूँ कि मैं कवि हूँ, स्वाभावतः मैं लड़ाकू नहीं हूँ। मैं अपने वातावरण से एक रूप होने को सर्वस्व निछावर करना चाहूँगा।

तुम्हें विदित है कि मैं पश्चिम की भौतिक सभ्यता में उसी तरह विश्वास नहीं करता जिस तरह मैं यह नहीं मानता कि मनुष्य में सर्वोच्च सत्य यह भौतिक शरीर है, किन्तु उससे भी कम विश्वास मेरा भौतिक शरीर के नाश में है''।

मैं पूर्व और पश्चिम के सच्चे मिलन में विश्वास करता हूँ। प्रेम, आत्मा का चरम सत्य है। उस सत्य को क्षुब्ध न होने देने के लिये हमें शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये और हर प्रकार के प्रतिरोध के विरुद्ध उसकी पताका को ले चलना चाहिये।

आध्यात्मिक मनुष्य अपने पूर्णत्व को प्राप्त करने के लिये संघर्ष करता आया है और स्वतंत्रता के नाम पर प्रत्येक सच्चा स्वर इसी मुक्ति के लिये है। राष्ट्रीय आवश्यकताओं के नाम पर भयंकर भेदभाव की दीवारों को उठाना उसके लिये बाधक है। अतः आने वाले दिनों के बीच वह उस राष्ट्र के लिये कारागार निर्माण करना है, कारण कि राष्ट्रों की मुक्ति का एक मात्र मार्ग, अखिल-मानव-जगत के आदर्श में है।

...... सच्चा भारतवर्ष एक विचार है न कि मात्र एक भौगोलिक तथ्य। ......

मुझे अपने मनुष्यत्व पर अभिमान है कि मैं अपने देश की भाँति दूसरे देश के कवियों और कलाकारों को अपना सकता हूँ। मनुष्य की महती उपलब्धि और प्रतिभा पर मुझे वैसा निश्छल हर्ष होता है, मानो वह मेरी अपनी ही हो।

न्यूयार्क, १८ मार्च, २१

वसंत आ गया है। आकाश में धूप छलछला रही है। मैं चिड़ियों, वृक्षों तथा हरीभरी पृथ्वी से एक-रूप होते विह्वल हूँ। मलयनिल मुझे गाने के लिये पुकारती है किन्तु दुर्भाग्यशाली होने के नाते मैं व्याख्यान देता हूँ और ऐसा करके मैं संगीत के उस विशाल संसार से अपना बहिष्कार करता हूँ जिसके निमित्त मैंने जन्म लिया था। ......

आदम व ईव के बच्चों ने स्वर्ग खोने का खेल बार बार खेला है। हम अपनी आत्मा को सन्देशों और सिद्धान्तों की पोशाक पहना लेते हैं और प्रकृति के खुले वक्ष में निहित अनन्त जीवन का स्पर्श खो देते हैं। मेरा यह पत्र जिसमें एक निर्वासित आत्मा की पुकार है आज के भारत में तुमको अत्यधिक विचित्र अनुभव होगा।

❁

एस० एस० रहाइनडैम
अटलान्टिक सागर

मैं अत्यन्त अकर्मण्यों के बन्धुत्व का एक सदस्य हूँ। मैं ईश्वर के पात्र का संभालने वाला हूँ। यह मेरा भी सौभाग्य है कि सभी दिव्य विभूतियों की भाँति गलत समझा जाऊँ। मेरा लक्ष्य अमर समझे जाने वाली सन्तति को निरर्थक बताना ही ही है। मुझे सभा-समितियों से कोई मतलब नहीं और न मुझे विशाल भवनों का शिलान्यास ही करना है, जो आगे जाकर धूल में मिल जायेंगे। मुझे तो उस छोटी नौका को खेना है जिसे इस समुद्रतट और स्वर्ग के उस समुद्रतट के बीच स्वतंत्र आने जाने की छूट है।

❁

मुझे तुम्हारे आश्चर्य का अनुमान है, ईसा ने अपनी देशभक्ति का कोई परिचय क्यों नहीं दिया जो यहूदियों में अत्यधिक व्यापक थी। इसका कारण था कि मनुष्य का महान् सत्य जिसको उन्होंने अपने ईश्वर-प्रेम के द्वारा अनुभव किया, उस संकीर्ण घेरे के अन्दर सिकुड़ जाना और कुचल जाना। मेरे अन्दर उस देश-भक्ति और राष्ट्रीयता का बहुत बड़ा अंश है, इसी कारण मैं उससे भयभीत हूं। मुझे उसके प्रवाह के विरुद्ध बह जाने का अवसर [illegible]।

तुमने मानवता के लिये भारत के कार्य को अपनाया है लेकिन मैं जानता हूँ कि तुम्हारी सहायता को हमारे यहाँ के बहुत से आदमी साधारण रूप में लेंगे और वे उससे शिक्षा नहीं प्राप्त करेंगे। तुम उस देशभक्त के विरुद्ध लड़ रहे हो जिसने पश्चिम से आकर पूर्व को अपमानित किया है।...

देखो, ब्रिटिश देशभक्त द्वारा क्या जघन्य कार्य आयर्लैण्ड में किया जा रहा है। वे उस तक्षक के समान हैं जो संघर्ष करने वाले पृथक जीवित प्राणियों को छोड़ने को तैयार नहीं है। क्योंकि देशभक्ति को अपने फैलाव का गर्व होता है और अन्य सत्तामय इकाइयों को एक सूत्र में बाँधने के लिये, वह ऐसे साधनों का उपयोग करता है जो अमानवीय हैं, अवसर आने पर हमारे देशभक्त भी ठीक यही करेंगे।

जब हमारी आबादी के एक लघुभाग ने अंतर्जातीय विवाह का अधिकार सामने रखा, तो अधिकांश ने उनको यह स्वतन्त्रता देना निर्दयता पूर्वक स्वीकार नहीं किया। वह अपने से भिन्न विचार जो अधिक स्वाभाविक एवं सच्चा था, मानने को तैयार नहीं था किन्तु एक नैतिक अत्याचार जो भौतिक

अत्याचार की अपेक्षा कहीं अधिक दोषयुक्त था, बनाये रखने को तैयार था। कारण कि शक्ति, संख्या व फैलाव में निहित है और शक्ति चाहे वह देशभक्ति के रूप में हो और चाहे किसी रूप में वह स्वतन्त्रता से प्रेम नहीं करती।...

मैं भारत से प्रेम करता हूँ, किन्तु मेरा भारतवर्ष एक विचार है न कि एक भौगोलिक स्वरूप। इसीकारण मैं देशभक्त नहीं हूँ—मैं अपने समान देशभक्त सम्पूर्ण विश्व में खोजता रहूँगा, तुम उनमें से एक हो और मुझे विश्वास है कि ऐसे और भी

 व्यक्ति होंगे।

प्लेटो ने प्रजातंत्र के सारे कवियों को देश निकाला करने की धमकी दी थी। पता नहीं कि वह घृणा के कारण था अथवा क्रोध के कारण। क्या हमारा भारतीय स्वराज्य अपनी सत्ता से आने के बाद ऐसे बेकार आदमियों को जो कल्पनाओं का पीछा करते हैं, स्वप्न सृजन करते हैं, जो न जोतते हैं न बोते हैं, जो न पकाते हैं न खिलाते हैं, जो न कमाते हैं न कूटते हैं और जो न प्रस्ताव बनाते हैं और न समर्थन करते हैं, निर्वासन की आज्ञा देगा!

मेरी वह प्रेयसि कहाँ है, जो बचपन में मेरी एक मात्र सहचरी थी और जिसके साथ मैंने अपने यौवन के प्रमाद दिवस स्वप्नलोक के रहस्य को खोज निकालने में बिताये थे। मेरी वह रानी मर चुकी है और मेरी दुनिया ने उस सौन्दर्य के अन्तर-द्वार के पट बन्द कर दिये जो मुझे स्वतन्त्रता का वास्तविक सुख देते थे। मेरी दशा शाहजहाँ की उस स्थिति के भाँति है जब उसकी प्रेयसि मुमताज मर चुकी थी। अब मैंने अपनी सन्तति को—एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की सुन्दर योजना छोड़ दी है किन्तु वह औरंगजेब की भाँति होगी जो मुझे जेल में डाल कर मेरे जीवन के अन्त तक मेरे ऊपर आधिपत्य रखेगी।—शांतिनिकेतन मेरी आत्मा का क्रीड़ास्थल रहा है। जो मैंने उसकी भूमि पर उत्पन्न किया वह मेरे स्वप्न पदार्थ से निर्मित था।

लन्दन, १० अप्रैल १९२१

अंगरेज राष्ट्र के विरुद्ध अपनी सारी शिकायतों के होते हुये भी मैं तुम्हारे देश से प्रेम करना, नहीं छोड़ सकता—वह देश जो मेरे कुछ घनिष्टतम् मित्रों का जन्म स्थान है।...

किसी राष्ट्र की सुरक्षा उन पवित्र आत्माओं पर निर्भर होती है जो उस देश में यदा-कदा आने वाली अनैतिक बाढ़ के मध्य भी नैतिक परिपाटियों को ऊपर उठाये रखते हैं।

वारन हेस्टिंग के होते हुये भी एडमण्ड बर्क ग्रेट ब्रुटेन की महानता का प्रतीक रहा, हम महात्मा गाँधी के कृतज्ञ है कि उन्होंने भारत को यह सिद्ध करने का मौका दिया कि भारत का विश्वास मनुष्य की दैवी आत्मा में अब भी जीवित है।

●

पेरिस, १८ अप्रैल '२१

दूरदर्शिता एक देन है और मुझमें उसका नितान्त: अभाव है। मुझमें कुछ अन्त दृष्टि भले ही हो किन्तु दूर दृष्टि बिलकुल भी नहीं है। दूर दृष्टि में हिसाब लगाने की शक्ति होती है किन्तु अन्तदृष्टि में मानस-चित्र की।

पिंजड़ा स्थायी होता है, घोंसला नहीं। किन्तु जो सच-मुच स्थायी है उसे असंख्य अस्थायी क्रमों को पार करना होता है। बसन्ती पुष्प भी स्थायी हैं क्योंकि वे मरना जानते हैं।

वह सभ्यता जो विजय प्राप्त करती है; मनुष्य के लिये संघर्ष कर रही है, और वह सभ्यता जो मौलिक एकत्व का अनुभव अस्तित्व की गहराई में अनुभव करती है दोनों एक दूसरे की पूरक हैं।

बर्लिन २१ अप्रैल १९२१

सम्भवत: ऐसी सार्थक समिति के साथ मैं कभी भी काम नहीं कर सकूँगा जिसके सदस्य अत्यन्त प्रभावशाली तथा प्रतिष्ठायुक्त हों—कारण कि मैं मूलत: यायावर हूँ। संसार के शक्तिशाली पुरुष, जो अधिपति हैं अपने लिये अपना कार्य-संचालन कठिन बना देते हैं। मैं इसे जानता हूँ और शान्तिनिकेतन के सम्बन्ध में मुझे इसका अनुभव है। फिर भी मुझे असफलता का भय नहीं है, मुझे केवल यह भय है कि अनभिज्ञतावश मैं सफलता की खोज में कहीं सत्य से दूर न हट जाऊँ।

❁

स्ट्रैसबर्ग २६ अप्रैल १९२१

जीवन के अधिकांश में "मैंने अपने स्वप्न केवल हवा में बोये हैं" और मैंने घूम कर यह कभी भी नहीं देखा कि उनमें कोई फसल हुई या नहीं, परन्तु अब मैं फसल देख कर चकित होता हूँ। वह मेरा रास्ता रोक कर खड़ी होती है और मैं यह निश्चय नहीं कर पाता कि यह (फसल) कुछ मेरी ही है। जो भी हो यह एक बहुत बड़ा सौभाग्य है—भूगोल, इतिहास और भाषा की दूरी चीरते हुये मानव बंधुओं द्वारा सम्मान पाना .....।

स्ट्रैसबर्ग एक सुन्दर नगरी है और आज प्रात:काल प्रकाश सुन्दर है। ......जिस कमरे में मैं बैठा हूँ वह बहुत सुन्दर है। उसकी खिड़कियों से ब्लैक फारेस्ट का छोर दिखाई देता है। जिसके यहाँ हम ठहरे हैं वह एक परिष्कृत महिला है जिसकी एक प्यारी बच्ची है। उसकी मोटी अंगुलियाँ मेरे चश्मे के शीशों का रहस्य खोजने में बहुत मजा लेती हैं।

पत्र [illegible]—

जेनेवा ६ मई, १९२६

आज मेरा जन्म दिन है। किन्तु मुझे उसका आनन्द नहीं होता। वास्तव में यह दिन मेरे लिये नहीं है वरन् उनके लिये है जो मुझे प्रेम करते हैं और मुझसे दूर रहकर जो यह दिन मात्र कैलेण्डर की एक तारीख की तरह है। मेरी इच्छा थी कि आज कुछ मेरा समय बिलकुल मेरा ही होता किन्तु यह सम्भव नहीं हुआ। सारे दिन लोग मिलने-जुलने आते रहे हैं और बराबर बातें होती रही हैं। बात-चीत का कुछ अंश दुर्भाग्यवश राजनीतिक था और उससे द्वन्द्व-जगत का भाव बढ़ गया जिसका मुझे खेद होता है।...राजनीति मेरे स्वभाव के ठीक विपरीत है फिर भी एक ऐसे भाग्यहीन देश की असाधारण स्थिति में जन्म लेने के कारण अपने जब तक के गुबार को हम बचा नहीं सकते। इस समय जब कि मैं बिलकुल अकेला हूँ मैं प्रयास कर रहा हूँ कि मैं अपने मन को उस अनन्त-शान्ति की गहराई में टिका लूँ जहाँ संसार की सारी भूलें क्रमागत अपने सुर से फूल और तारों की अमर लय में लीन हो जाती हैं······प्रेम ही वह प्रकाश है जो ऐक्य की पूर्णता को प्रकट करता है और जो अनासक्ति के निरन्तर दबाव से रक्षा कर सकता है। इस कारण मैं तुम्हारा आलिंगन करता हूँ और तुम्हारे प्रेम से प्रेरणा लेता हूँ और तुमको अपने जन्मदिवस का नमस्कार भेजता हूँ।

ज्यूरिच के समीप १० मई १९२१

इसलिये बौद्धिक तथा भौतिक सम्पत्ति हमारी प्राप्ति में नहीं है, वरन् अपने स्वतंत्र विकास में है।"

प्रत्येक भारतीय को अभिमान होना चाहिये कि बड़ी कठिनाइयों के होते हुये भी, भारत अपने बच्चों में अब भी ऐसा महान् व्यक्तित्व पैदा कर सकता है जैसा हमें राममोहन राय में मिलता है। महात्मा गांधी ने मध्य-कालीन-भारत के नानक, दादू व कबीर आदि का उदाहरण दिया है। वे महान् थे, इसलिये कि अपने जीवन और उपदेशों से उन्होंने हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों को घुला-मिला दिया। रूप की भिन्नता के होते हुये भी इस प्रकार के आध्यात्मिक ऐक्य की अनुभूति भारत के अनुरूप है।

❁

हमबर्ग, १७ मई '२१

जिस चीज़ ने मेरा हृदय हिला दिया है वह यह बात है कि इस महाद्वीप का पीड़ित 'मानव' पूर्व की ओर आशा से निहार रहा है।

'सत्यम्, शिवम्, अद्वैतम्'

—आज के भारत में राममोहनराय सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस सत्य को अनुभव किया। उन्होंने उपनिषद् की उस पवित्र ज्योति को ऊँचा किया जिसके द्वारा अहम् पर विजय प्राप्त करने वाले प्रत्येक के हृदय में प्रवेश पाते हैं।

❁

हमबर्ग २० मई १९२१

मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं देशभक्त या राजनीतिज्ञ की भाँति कभी न मरूँ वरन् मेरी मृत्यु एक स्वतन्त्र आत्मा के समान हो, वह एक सम्पादक की भाँति न होकर एक कवि की भाँति हो।

●

स्टाकहोम २६ मई १९२१

स्विटजरलैण्ड से डेनमार्क और वहाँ से स्वेडन के मार्ग को मैं देखता आ रहा हूँ। सभी जगह मैंने फूलों को विभिन्न रंगों के साथ फूलते देखा है। यह मुझे पृथ्वी का विजयघोष-सा प्रतीत होता है, जो अपनी रंगीन टोपी को आकाश में उछाल रही है। पश्चिम में, मेरे मार्ग में भी स्वागत की प्रचुरता इसी प्रकार झलकी है।

कुछ दिन हुये जब मैं हमबर्ग के होटल में अपने कमरे में अकेला आराम कर रहा था, उस समय मुझसे मिलने के लिये दो अति प्रिय जर्मन शर्मीली लड़कियाँ फूलों का गुच्छा लिये हुये चुपके से मेरे कमरे में आयीं। उनमें से एक ने टूटी-फूटी अंग्रेजी में मुझसे कहा, 'मैं भारत से प्रेम करती हूँ।" मैंने उससे पूछा, तुम भारत से क्यों प्रेम करती हो?" उसने उत्तर दिया, "क्योंकि तुम ईश्वर से प्रेम करते हो।"—यह इतनी बड़ी प्रशंसा थी जिसे मात्र विनम्रता पूर्वक स्वीकार करना कठिन था।...

राष्ट्र अपने देश से प्रेम करते हैं और उस राष्ट्रीय प्रेम ने एक दूसरे के प्रति घृणा और सन्देह पैदा कर दिये हैं। संसार एक ऐसे देश की प्रतीक्षा में है जो अपने को नहीं ईश्वर को प्रेम करता है। केवल उसी देश को सारे देश और सभी मनुष्य प्यार करेंगे। 'हमारा पूर्ण विकास केवल ईश्वर प्रेम है। उसमें सारी समस्याओं का अन्तिम हल है।

बर्लिन २८ मई १९२१

८९ तुम अनुमान नहीं कर सकते कि स्कैंडिनेविया और जर्मनी में जहाँ-जहाँ मैं गया हूँ सभी जगह कितना प्रेम मेरे चारों ओर उमड़ता रहा है, फिर भी मेरी इच्छा अपने ही बन्धुओं में फिर पहुँचने की है। मैं जीवन भर वहाँ रहा हूँ, मैंने अपना सभी काम वहाँ किया और अपना प्रेम भी वहीं अर्पित किया है फिर भी मुझे बुरा नहीं मानना चाहिये कि मेरे जीवन की फसल ने वहाँ पूरा-पूरा ऋण अदा नहीं किया। फसल का पक जाना स्वयं एक पारितोषिक मेरे लिये है।...

❁

बर्लिन ४ जून १९२१

९० आज मेरा बर्लिन भ्रमण समाप्त हो गया है।... इस देश में मुझे आश्चर्यजनक अनुभव हुआ है। जैसी प्रशंसा मुझे मिली है उसे मैं गम्भीरतापूर्वक स्वीकार नहीं कर सकता।...

मैं एक घर के दीपक के समान हूँ जिसका स्थान एक कोने में है और जिसका सम्बन्ध प्रेम की घनिष्ठता से है, किन्तु जब मेरे जीवन को बलात आतिशबाजी के खेल में खींच लिया जाता है तो मैं तारों से क्षमा मांगता हुआ अपने को कुछ छोटा अनुभव करता हूँ।

❁

हानोवर २५, जून १९५५

यहाँ जर्मनी के सभी भागों का समुदाय मुझसे मिलने को एकत्र हुआ है।...कल मैं यहाँ आया था और तीसरे पहर हमारी पहली सभा हुई। पहला प्रश्न जो मुझसे एक कनाडा निवासी सज्जन ने किया वह यह था—"हमारे वैज्ञानिक सभ्यता का भविष्य क्या है?" जब मैंने इसका उत्तर दे दिया तो उसने फिर पूछा, "बढ़ती हुई आबादी की समस्या कैसे हल होगी?" अपने उत्तर के बाद मुझसे बौद्ध धर्म के सच्चे स्वरूप का आभास देने को कहा गया। इन तीनों विषयों में पूरे तीन घन्टे लगे। इन लोगों की उत्सुकता देख कर हर्ष होता है, उनमें जीवन की बड़ी समस्याओं के विषय में सोचने की मनोवृत्ति है। वे समस्याओं पर गम्भीरता पूर्वक ध्यान देते हैं।..."हमारे आंग्ल-अध्यापक हमारे मन को कोई प्रेरणा नहीं देते। हम यह अनुभव नहीं करते कि सच्चा जीवन रहने लायक बनाने के लिये विचार आवश्यक है। हमारे अन्दर वह सच्चा उत्साह नहीं है जो आत्मा की भेंट है।

एस० एस० मोरिया (जहाज)
५ जुलाई १९२१

एक दिन मुझे अपनी प्रसिद्धि से बाहर आने के लिये लड़ना होगा, क्योंकि इन सुनहली दुर्ग दीवारों को पार कर गंगा (नदी) की पुकार अब भी मेरे पास आती है। वह मुझसे कहती है—"कवि तुम कहाँ हो ?" और मेरे प्राण उस कवि को खोजते हैं। उसको पाना कठिन हो गया है, क्योंकि मनुष्यों के विशाल समुदाय ने उसे सम्मान से ढक दिया है और वह उसके नीचे से निकाला नहीं जा सकता।

"मुझमें एक लालसा होती है कि पहले अपने प्रसिद्धिहीन स्थान पर पहुँच कर मैं शरण लूँ। अन्य पुरुषों के अर्थों से निर्माण किये हुये विश्व में रहना घृणास्पद है।"

एक कवि के लिये अपने जीवन में पुरस्कार खो देना कहीं उत्तम है इसकी अपेक्षा कि उसे कहीं झूठा पुरस्कार मिले अथवा अत्यधिक परिमाण में मिले।

वह व्यक्ति जो प्रशंसा करने वालों से बराबर घिरा रहता है उसको ऐसी मानसिक टुकड़े-खोरी का आदी हो जाने का भारी खतरा है। उसमें जाने अनजाने उसके लिये (प्रशंसा के लिये) एक भूख जाग जाती है और जब वह टेक हटा ली जाती है तो उसको चोट-सी लगती है।

एस० एम० मोरिया ७ जुलाई १९२१

कवि के लिये कविता अपना एक एकान्त बनाती है। फलतः मन की अनासक्ति, जिसकी सजीव जीवन के लिये आवश्यकता है खो जाती है या खण्डित हो जाती है, विशेष-कर उस समय जब कि कवि को रचनात्मक कार्य-क्रम छाँटना पड़ता है। ५३

एस० एम० मोरिया ८ जुलाई १९२१

"व्याकरण पर पाण्डित्य, तथा साहित्य सृजन दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। व्याकरण पर जोर देने से भाषा-लालित्य नष्ट हो सकता है। प्रथाओं की सरलता आदर्शों के परिपूर्ण के विरुद्ध भी हो सकती है। ५४

एस० एम० मोरिया ९ जुलाई १९२१

जब हमारा अधिकार कमजोर होता है और उसको पाने का ढंग शौर्ययुक्त नहीं होता, तब सारी प्राप्ति भी हमको अधिक निर्धन बना देती है। ५५

एस० एस० मोरिया १२ जूलाई १९२१

९६ पिछले १४ महीनों में केवल एक ओर मेरा ध्यान रहा है और वह यह कि भारत को मानवता के उत्कर्षयुक्त संसार की सजीव हलचलों के सम्पर्क में लाऊँ। यह इस कारण नहीं था कि इस सम्पर्क से केवल भारत को ही लाभ होगा वरन् इसलिये कि मुझे पूरा विश्वास था कि जब भारत का निद्रालस मस्तिष्क अपनी तन्द्रा से मुक्त होगा तो वह मानव जाति की आवश्यकताओं के लिये कुछ ऐसी भेंट देगा जो सचमुच बहुमूल्य है।

●

एस० एस० मोरिया १३ जूलाई १९२१

९७ मेरे मस्तिष्क में भारत के विचार की अपनी भिन्न रागिनी है जो नए दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है...जिस भारत की मैं कल्पना करता आया हूँ वह संसार का है। जिस भारत में थोड़े समय बाद मैं पहुँचूँगा वह पूर्णतय: अपना है, किन्तु सेवा मुझे इनमें से किसकी करनी चाहिये?

●

एस० एस० मोरिया १४ जूलाई १९२१

९८ पत्रों में बोलने की अपनी शक्ति होती है जो कि हमारी जीभ में नहीं होती।

●

एस० एम० मोरिया २५ जुलाई १९५९

हे मित्र !

अपने इस अन्तिम पत्र को समाप्त करने से पूर्व मैं हृदय से तुम्हारी उस असाधारण उदारता के प्रति कृतार्थ हूँ कि तुम मेरी अनुपस्थिति में आलस के बराबर पत्र भेजते रहे। मेरे लिये ये पत्र उस संबल की भाँति हुये जो रेगिस्तान में जाने वाले काफिले को भोजन और जल के रूप में होता है।

एक पत्र लेखक के रूप में तुम अतुलनीय हो। मेरे लेख पत्र नहीं कहे जा सकते—जैसे घोंघों को मछली नहीं कहा जा सकता। वे मात्र किताब के पन्नों की तरह हैं। उसके अंश जैसे किसी ग्रह से टूट कर गिरते हों और उन्हें तुम्हारी तरफ फेंके जाने में उनका अधिकांश एक जगमगाहट पैदा कर राख बन जाता हो। किन्तु तुम्हारे पत्र प्यासी धरती पर वर्षा की बौछार की तरह आते हैं। फिर भी तुम्हें मेरी ओर से एक बात पर विचार करना चाहिये—मुझे तुम्हारे साथ दौड़ने में कठिनाई है, क्योंकि मैं उस भाषा में लिखता हूँ जो मेरी अपनी नहीं है और साथ ही किसी अन्य भाषा में कोई पत्र न लिखने की जड़ता भी रही है।...मुझे पत्र लिखते समय लड़ना पड़ता है। दूसरी ओर तुम्हें पत्र लिखना इतना सरल है जैसे वसंतागमन पर हमारी साल कुन्जों को अपनी पत्तियाँ डाल देना।

शान्तिनिकेतन ३, जुलाई १९२१

[illegible],

मुझे अभी-अभी तुम्हारा पत्र मिला जिसमें तुमने संगठित धर्म के सम्बन्ध में मेरे विचार जानने चाहे हैं।

एक आध्यात्मिक विचार की दृष्टि से मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है, क्योंकि यह पूर्णव्यवस्था की तरह एक व्यक्तिगत चीज है जब उसकी आनुमानिक चर्चा की जाय।...

आचरण और जीवन में सच्चा ईसाई अपना बहुत अधिक [illegible] किन्तु केवल ईसाईमत के सदस्य बनने के कारण मनुष्य [illegible] क्योंकि ईसाई होने का पद पा लेता है और यह अधिकार समझता है कि वह उनसे जो उस मत को नहीं मानते, चाहे वे उनसे अधिक उत्तम हों, घृणा कर सकता है।...

एक संस्था जो उन व्यक्तियों को जो अपनी एक आकांक्षा में सच्चे हृदय से विश्वास करते हैं, एक सूत्र में बाँध देती है यह अपने सदस्यों के लिये बहुत बड़ी सहायता है। किन्तु यदि अपने विधान से वह उन व्यक्तियों को आश्रय देती है जिनमें सच्ची निष्ठा का एकीकरण नहीं है बल्कि एक-सी आदत का ही सामंजस्य है तो वह अनिवार्य रूप से दम्भ और असत्य का जन्म स्थान बन जाती है।...

सभी आध्यात्मिक महापुरुषों की भाँति ईसामसीह भी नैतिक महानता में अद्वितीय थे। उनका सारी मानवता से प्रेम का पवित्र सम्बन्ध था।...दूसरी ओर ईसाई गिरजाघर उन स्थापित स्वार्थों का समर्थन करने में लगे हैं कि जो दुर्बल का शोषण करना चाहते हैं। ऐसा होने का कारण यह है कि

गिरजाघर एक संस्था के नाते से एक शक्ति है और जिसकी ओर शक्तियों से सन्धि है जो मात्र धर्महीन ही नहीं, बहुधा अधर्मी हैं। सच तो यह है कि वह उन्हीं शक्तियों से जिन्होंने ईसा को सूली पर चढ़ाया, समझौता करने को तैयार है।... यह कहना सच है कि धार्मिक जाति के अधिकांश सदस्यों का चरित्र उसके आदर्शों का स्तर निश्चित करता है। इसीलिये वह संस्था जो अपने पदार्थों की काट-छांट में विवेक से काम नहीं लेती अपनी संख्या वृद्धि की बेहद लालच रखती है और अधिकतर वह अपने सदस्यों की सामूहिक तीव्र कामनाओं को प्रकट करने वाली मशीन बन जाती है।...

---

* गुरुदेव द्वारा अपने मित्र विलि पिअर्सन को लिखा गया एक पत्र।